अंधकार में एक प्रकाश जयप्रकाश

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

अंधकार में एक प्रकाश

जयप्रकाश

अंधकार में एक प्रकाश

जयप्रकाश

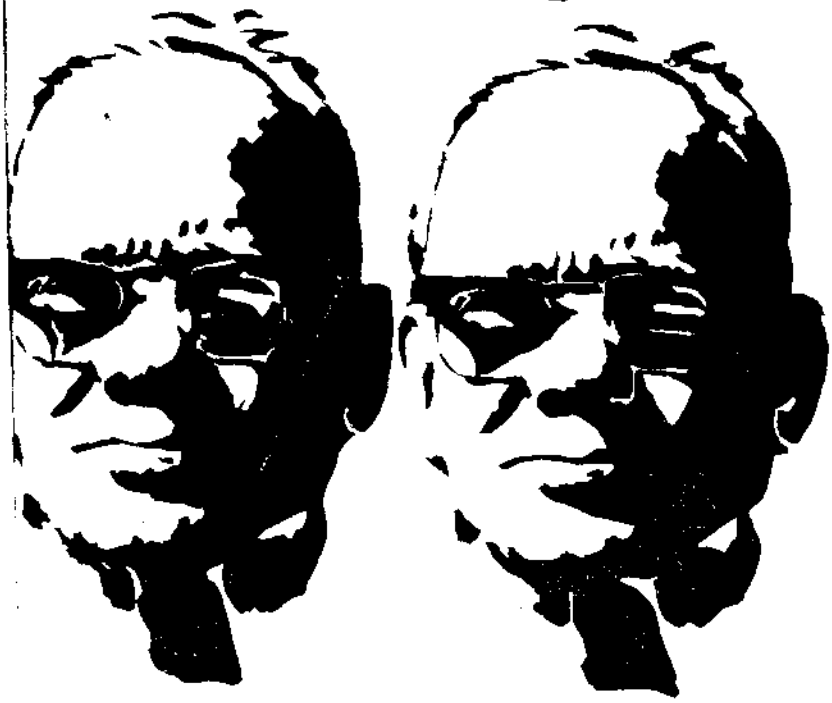

सरस्वती विहार
२१, दयानन्द मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

मूल्य : तेरह रुपये (13.00)

प्रथम संस्करण : 1977

© डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, 1977

प्रकाशक : सरस्वती विहार, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली

मुद्रक : मॉडर्न प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

ANDHKAR MEN EK PRAKASH : JAYAPRAKASH
(Current Affairs) by Dr. Lakshmi Narain Lal

अंधकार में एक प्रकाश

जयप्रकाश

पहला खंड : यात्रा

कथा वही है। चारों ओर भयानक अकाल और जीवन-पतन। मूल्यों और आदर्शों का गहन अंधकार छाया हुआ था। न वर्षा, न कृषि, ऊपर से राक्षसों और दानवों के अनंत अत्याचार। ऋषि-मुनियों ने तब शक्ति के आविर्भाव के निमित्त अपने-अपने रक्त की बूंदों से एक कुंभ भरकर उसे धरती में गाड़ दिया था।

मिथिला की राजधानी जनकपुर। राजा थे जनक। राजा अगर किसान बनकर सूखी भूमि पर हल चलाएं तो वर्षा होती है। राजा जनक हल चलाने लगे। हल के फार से लगकर तब वही धरती में गड़ा हुआ कुंभ फूटा था और उसीमें से तब वह शक्ति निकली थी, भूमिजा सीता, जानकी, जनकनंदिनी, जगदम्बा···।

भूमिजा वहां से जनकपुर ले आई जाती हैं और जानकी की कथा शुरू होती है। धनुषयज्ञ होता है। रावण अपमानित होता है। अवध के राम से मिथिलेश कुमारी का ब्याह होता है। राम-सीता वनवास होता है। जानकी-हरण होता है। फिर लंका-दहन। रावण-वध और फिर राम द्वारा जानकी को वनवास। और अंत है कथा का—जानकी का फिर उसी पृथ्वी में अंतर्धान हो जाना।

यह तो कथा है।

पर पूरे अवध में, समूची सरजू-गंगा घाटी में, हर गांव, हर मेले, हर तीर्थयात्रा में शत-शत कंठों से यह करुण गीत क्यों सुनाई देता है—'अवधा लागेला उदास, हम ना अवध मा रहिबै ?' क्यों तब से सारा लोक-मन-प्रान जानकी की उस वनयात्रा, उस वनवास का अनुगामी हो गया है ?

जानकी पृथ्वी माई की कोख में समा गई और हम सबका मन वनवासी

हो गया! सरजू गंगा के हरे-भरे पर उदास कछारों में, भरे-पूरे पर उजड़े गांवों में घूमता हुआ मैं क्यों वही करुण स्वर-लहरियां अपने भीतर से सुनता हूं :

वह जानकी कहां समा गई ?
जानकी कहां हैं ?
शायद रूठकर नैहर चली गईं—मिथिला में।

हम अवध में रामलीला करके अंत में रोते ही रह जाते हैं। क्योंकि कथा का वह करुण अंत दुहराया जाता है। पर सुना है, मिथिला में राललीला नहीं होती। वहां हर साल जानकी का ब्याह होता है। दुलहिन जानकी सरकार का परब होता है। राम दुलहा सरकार ब्याहने आते हैं।

तो, हो न हो, जानकी मिथिला में हैं। पागल, उदास अवधवासियों का यह विश्वास कभी खंडित क्यों नहीं होता कि जहां मानस-पाठ होगा, वहां हनुमानजी जरूर उपस्थित रहेंगे ? जहां कन्या का ब्याह हो रहा होगा, जानकी अवश्य ही आई होंगी कोहबर में ? वाह !

सन् सत्तर की बात है या उनहत्तर की, सो पता नहीं। सब कुछ उस दिन गड्डमड्ड हो गया, जिस दिन पटना की गंगा पार कर छपरा-सिवान होता हुआ, सलीमपुर घाट से नारायणी नदी पार कर चंपारन क्षेत्र में आया और वहां से घूमता-घामता दरभंगा, मधुबनी, पूर्णियां होते हुए सीतामढ़ी पहुंच गया।

ऐसन सुंदर मिथिला धाम
औरो पायन कौनो वाम।

सीतामढ़ी। यही वह स्थान है, जिस धरती पर राजा जनक ने हल जोता था और जानकी प्रकट हुई थीं खेत की धरती से। सीतामढ़ी से सुरसंड (नेपाल), फिर जनकपुर।

जो हो, देखिए भागिए नहीं। जरा धीरे-धीरे चलिए। पहले हमें यह बताइए कि वह रहा जानकी मंदिर, ठीक ! तो वह बाग-तड़ाग किधर हैं ? वह फुलवारी कहां है ? वह गिरिजा मंदिर ?

बाग-तड़ाग विलोक प्रभु
हिय हरसे नर-नार।
लगे सुमंगल सुजन सब
विधि अनुकूल विचार।

और वह स्थान किधर है साहेब ? हमको एक भी बात भूली नहीं है, हां।

विनय प्रेमवश भई भवानी
खसी माल मूरत मुस्कानी।

जानकी गईं भवानी की पूजा करने। जानकी के मन में यह बात पक्की हो चुकी थी कि उनकी शादी अगर होती तो केवल राम से होगी। तो राम के प्रेम में विभोर थीं जानकी, अच्छा ! और खुद पूजा करके आई थीं भवानी की। सो उनके हाथ से पूजा का थाल खिसककर जमीन पर गिर गया। जानकी हड़बड़ा गईं। हाय दइया, ई का होइ गवा। सो उनके हृदय के भीतर जो राम की मूरत थी, सो मुस्करा पड़ी।

और वह जगह कहां है जहां धनुषयज्ञ हुआ था ? सुनिए, नेपाल में धनुषा एक जगह है—जनकपुर से दस मील दूर। टूटे हुए धनुष का एक भाग वहां जाकर गिरा है। अरे सगरी कथा ही नहीं, असलियत भी है मालिक। कहां वह त्रेता, कहां आज कलियुग। जनकपुर में एक जगह है अग्निकुंड। वहां के महात्मा ने कहा- देखिए, यहां आपको कोई ठीक से नहीं बताएगा। आप मिथिला की परिक्रमा कीजिए। अभी अपने देश लौट जाइए। क्यों साहब, क्यों लौट जाऊं ? इसीलिए इतनी दूर आया हूं ! वाह ! अच्छा, यह कहिए न, क्योंकि फाल्गुन माह शुक्ल द्वितीया से मिथिला की परिक्रमा शुरू होती है। कल्याणेश्वर महादेव से परिक्रमा चलती है। गिरिजा स्थान, जलेश्वर, छिरेखर, ध्रुवकुंड, फिर धनुषा। वहां से लौटकर कल्याणेश्वर, फिर बिसौल (विश्वामित्र का आश्रम) और तब जनकपुर। जनकपुर में अंतगृह परिक्रमा, पूर्णिमा के दिन यात्रा पूरी हो जाती है।

जानकी कहां अंतर्धान हुईं ?
वाल्मीकि के आश्रम बिसौल में।

नहीं, मैं लौटकर अवध नहीं जाऊंगा। जानकी का ब्याह देखूंगा। उसी ब्याह में जानकी के पैर पकड़ लूंगा। मैं पहचानता हूं मातु जानकी को, जी हां। कैसे ? अरे तुलसीदास ने परिचय-पत्र दिया है मुझे, मिथिला में जानकी-ब्याह का :

लागत मार्गशीर्ष मनभावन
कथित कृष्णगीता अतिपावन।
रामविवाह महोत्सव जानी
तुलसी हिए भक्ति हुलसानी।

सिय गिरिजा पूजन निधि साजी
राम विवाह बधाई बाजी।
अवध संतमंडली निहारी
गावहिं नारि मैथिली गारी।
तुलसी करि प्रनाम सनमानी
हाथ जोरि बोले मृदु बानी।
धनि मातुल हम तौ सिसु राउर
मिथिला देश मोर ननियाउर।

मैं गया जनकपुर धाम में। निश्चित तिथि आ गई। समूची मिथिला के सभी कोनों से अपार जनसमूह जनकपुर में खिचा चला आ रहा है। चारों ओर गान, कीर्तन मंडलियां, रामलीला पार्टियां, दुलहा-दुलहिन की जयजयकार से सब कुछ गूंजने लगा। विवाह के एक दिन पहले 'मटिकोरा' हुआ। इसमें सुहागिन स्त्रियों ने कन्या के साथ सरोवर तट पर जाकर लक्ष्मीपूजन किया और सरोवर से मिट्टी ले जाकर विवाह-वेदी बनाई। आगे-आगे कीर्तन मंडलियां, पीछे सुहागिनों के समवेत गीत :

आई करथि विधिवत वैदेही पूजन कमला तीर हे।
हिय मंदिर में रघुवर राजत पुलकत सकल शरीर हे॥

दूसरे दिन संध्या चार बजे जानकी मंदिर से जानकी की पालकी रंगभूमि में आई। पीछे-पीछे सजे हुए हाथी और घोड़ों की कतार और साथ में भिन्न-भिन्न दृश्यों से अलंकृत विमान। और जानकी का सिंहासन ऊंचे मंच पर रख दिया गया। अब राम मंदिर से दुलहा सरकार की सवारी चलती है। सांझ हो आई है। शत-शत कंठों से जयजयकार गूंज उठी। बाजे बजने लगे। स्त्रियां परिछन गीत गाने लगीं। धीरे-धीरे विवाह के कर्मकांड शुरू हुए।

…पर यह तो वही लीला है। बल्कि लीला की लीला। ब्राह्मण का लड़का जानकी बनता है, ब्राह्मण का ही लड़का राम। अरे, किसान लड़का जानकी बनता तब तो कोई बात बनती। जानकी तो भूमिजा थीं। तो भइया हो, मातु जानकी कहां हैं?

बाप रे, जनकपुर में भी नहीं हैं। अगली बार नेपाल बार्डर के गांवों में घूमता हुआ अब मिथिला के ग्रामीण अंचलों में चला, मधुबनी, हरलाखी, जैनगर, बैरगिनियां, पूर्णियां के गांवों में।

मिथिला के गांवों में केवल दो वर्ग के लोग। भूमिपति और भूमिहीन।

इसी तरह हर गांव में एक काली दुर्गा मंदिर, दूसरा वैष्णव मंदिर। ये मंदिर छप्पर के भी हैं और कहीं-कहीं पक्के भी।

हर गांव में असाढ़ी पूजा। जगदम्बा की पांच पिंडी पूजा। गंगा के मोकामा घाट से उत्तर सारी मिथिला में—दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, सहरसा, बेगूसराय, भागलपुर का उत्तरी हिस्सा और मुजफ्फरपुर का पूर्वी हिस्सा—इस पूरे भारत खंड में एक ओर जगह-जगह तांत्रिकों के अखाड़े, गर्भगुफाएं मिलती हैं तो दूसरी ओर काली जगदम्बा के मठ। तीसरी ओर वैष्णव मंदिर, जहां केवल धूपदीप के लिए एक पुजारी उदास बैठा रहता है। करीब-करीब हर गांव में चार तरह के लोग दिखाई देते हैं—मोटे होंठ वाले—संथाल रक्त का प्रभाव, मंगोल चेहरे वाले—मोरंग की किरात जाति का रक्त-संस्कार, पक्के सांवले रंग वाले, थारू जाति का रक्त-प्रभाव, गोरे-चिट्ठे बड़ी-बड़ी मधुमयी आंखों वाले हट्टे-कट्टे ऊंचे कद के लोग—आर्य रक्त के। कहते हैं, आर्यों ने जब गंडक नदी को पार किया तो यहां के मूल निवासियों से उनके विकट युद्ध हुए। आर्यों ने यहां के जंगलों में आग लगाई। वही आग कहीं-कहीं अब तक जल रही है मिथिला में। तांत्रिक कहता है—वह आग उनके पास है। मैथिल ब्राह्मण कहता है—नहीं, उस आग के अग्निहोत्री वे ही हैं। भूमिहार मानता है, जिसके पास शक्ति है वही है अग्निपति।

भूपति आर्य राजा जनक तो विदेह थे, उनके वंशज कहां हैं? ये प्रश्न पूछते हैं मिथिला के भूमिहीन किसान, दरिद्र मजदूर और पीढ़ी-दर-पीढ़ी से भूपति, जमींदार, सेठ और ब्राह्मण के कर्जदार। ये ही लोग 'सरकार' हैं। ये ही 'मालिक' हैं। यहां जानकी 'दुलहिन सरकार' हैं, राम 'दुलहा सरकार' हैं।

चंडी दुर्गा, कालीथान पर लाल पताका लहराती है। असाढ़ी राजा इस साल बड़े जोरों पर है। तांत्रिकों की वह शाखा, जिसे जनबलि पर विश्वास है, जो ताजे शव की छाती पर बैठकर शक्ति की उपासना करते हैं, वे अब गांवों के कालीथान, चंडी मंडप और जगदम्बा की बलिवेदी पर अपने माथे का खून चढ़ाकर कहते लगे हैं—मठाधीश महंत लोग राज-बराती बनते हैं, जमींदार, सेठिया सखी सम्प्रदाय वाले जानकी-दल हैं। अरे आर्यों की ही तो यह परम्परा है—बड़ा भाई राजा बने और छोटा भाई महंत। एक भोगे राजा के नाम पर, दूसरा भोगे तंत्र-साधना से भगपूजा पर बैठे-बैठे। साले पंचमकारी। बोलो, काली दुर्गा की जै!

लाल खून लाल सलाम। माता शक्ति तेरो नाम। न जाने कब से दुर्भिक्ष

और अकाल चलता चला आ रहा है। कर्ज में जन्म, कर्ज में मृत्यु। राम-पार्टी। जानकी-पार्टी। जानकी को वनवास देकर अब जानकी-विवाह की झूठी लीला। तो सच क्या है ?

देवी मंदिर, काली मंदिर, राम मंदिर, सीता मंदिर, शिवाला और शक्ति मंदिर। हिमालय की पुत्री जगदम्बा की जै। मिथिला की भूमि शक्ति की भूमि। यहीं आए थे सन् बयालीस में वे सारे आतंकवादी। यहीं बम बनाने के कारखाने खुले थे। यहीं कोसी की तराई में सन् बयालीस का वह आज़ाद दस्ता स्थापित किया गया था। राममनोहर लोहिया ने यहीं पर आज़ाद हिन्द रेडियो लगाया था। जयप्रकाश ने यहीं से स्वतंत्रता के सेनानियों के नाम वह गुप्त पत्र लिखा था :

काली चंडी की यही शक्तिभूमि है।

अब सन् सत्तर के बाद की बात है। कथा वही है। चारों ओर अकाल, अन्याय, शोषण और जीवन के पतन हैं।

अब दुर्गा-पूजा में युवकों के हाथ अधिक हैं। वही भाग ले रहे हैं देवी के थान पर। भूमिहीन, भूखे किसान, डरे हुए शूद्र देवी मंदिर पर सुबह-शाम ढोलक, नगारा बजा रहे हैं। उनकी स्त्रियां शक्ति-जाप कर रही हैं। युवक कालीथान पर नाग-शहनाई फूंक रहे हैं। युवकों के बाप-मां चिल्लाते हैं—बाजा बजाना शूद्रों का काम है।

शूद्रों के युवक भैरव पिपहिरी फूंक रहे हैं। ढोलक, नगारा, शहनाई, भैरव पिपहिरी, नरसिंहा और माई गीत के मारक संगीत से गांव-गांव के आकाश गूंज रहे हैं। लगता है, कोई उच्चाटन मंत्र पढ़ता हुआ देवी संगीत में लहू की वर्षा कर रहा है।

आज देवी पूजा में पशुबलि का दिन है। साल-भर से घर-घर में पाले हुए खसी, गांव के पोखर में नहला-धोकर देवी के थान पर ले आए जा रहे हैं। सारा गांव पशुबलि में भाग लेने देवी के द्वार और आंगन में इकट्ठा हो चुका है। एक ओर बलि के बकरों का झुंड है। चारों ओर गांव के लोग खड़े हैं—स्त्री, पुरुष, वृद्ध, युवक, शूद्र, अशूद्र सब। सारा गांव। पहर-भर दिन चढ़ते-चढ़ते देवी संगीत पर काल भैरव का सुरताल अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। तंत्र और मंत्र से सारा वातावरण हिंसा, रहस्य और उच्चाटन की स्थिति में बदल गया है। आंगन में चौक पूर दिया गया है। बलि के दोनों खूंटों के बीच नीचे और ऊपर की गलाघोंटू लकड़ियां डाल दी गई हैं। पहला

बकरा, बड़के सरकार का। काली कृपाण। उधर देवी का फाटक खुलता है, इधर बलि के बकरे की गरदन सूली में फंसा दी जाती है। उसके अगले दोनों पैर खींचकर पीठ पर दबोच दिए गए हैं। उसकी पहली चीख के ऊपर ही कृपाण उसकी गरदन पर चल पड़ती है। सिर अलग नाच पड़ा है, धड़ अलग उछल रहा है। जयजयकार होता है। नाचता हुआ सिर उठाकर वहीं से देवी के कमरे में फेंक दिया जाता है।

दूसरा बकरा मंझले सरकार का। तीसरा छोटे बाबू का। चौथा पहुना साहब का। पांचवां ठाकुर का, छठा मिसिर का, सातवां पांडे का, आठवां···। सारा आंगन खून से लाल हो गया है। अनेक धड़ अब तक रह-रहकर उछल पड़ते हैं। धड़ों के पैर रह-रहकर कांप उठते हैं। कटी हुई गरदनों से अब तक खून की धार बहकर खून की मोटी धार में मिल रही है। आंगन में खप्पर पड़ा है—वही कुंभ—उसमें खून भरता जा रहा है। वही कुंभ···त्रेता युग का। नहीं-नहीं रे, यह कलियुग है।

सब बलि के कर्मकांड में आनन्दरत हैं। सब गा रहे हैं। सब बजा रहे हैं। बलिवेदी और मुंडमुंड के चारों ओर लोग परिक्रमा कर रहे हैं। तुरही, पिपिहरी और नरसिंहा में भैरव संगीत उमड़ रहा है। सबके माथे पर रक्त के टीके हैं। युवकों और युवतियों के चेहरे रक्तिम हो आए हैं। देवी का फाटक बंद किया जाता है। लाल ओहार फैला दिया गया है। देवी अब कमरे के भीतर बलिमुंडों के खप्पर से रक्तपान कर रही हैं।

जगदम्बा की जै !
ऊं नमश्चंडिकायै।
ऊं जयंती मंगला काली
भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री
स्वाहा स्वधा नमोस्तुते।
जय त्वं देवि चामुंडे
जय भूतार्ति हारिणी
जय सर्वगते देवि
कालरात्रि नमोस्तुते।

मुंगेर, सहरसा, पूर्णियां और भागलपुर ये चारों जहां मिलते हैं—कोसी और गंगा के बीच का अंचल, वहां बम फूटने लगते हैं। नक्सलाइट बम। आर्य

जब गंडक पार कर आगे बढ़े थे तब आगे के घने जंगलों में आग लगाते हुए बढ़े थे। जगदम्बा के मंदिरों में वही आग अब तक जल रही है। गांवों में वही आग फिर लग गई। सहरसा, खगड़िया, पूर्णिया, बेगूसराय और मुज़फ्फरपुर के गांवों में हत्याएं होने लगीं। जगदम्बा की जै। माओ को लाल सलाम। शक्ति पृथ्वी से निकली थी, सीतामढ़ी में। नहीं, शक्ति पैदा होती है बंदूक की नली से।

सहरसा के एक गांव में ज़मींदार को, बेगूसराय के एक गांव में साहूकार को, मुज़फ्फरपुर के एक गांव में देवी के पुजारी को खंभे में बांधकर मार दिया जाता है। नहीं, नहीं, नरबलि दी जाती है। पूरा सहरसा ही नक्सल युवकों का कार्यक्षेत्र बनता है। महिषी, राघवपुर, छातापुर गांवों में दिन-दहाड़े हत्याएं होती हैं। मुज़फ्फरपुर के मुसहरी-प्रखंड में खाट में बांधकर एक मनुष्य को ज़िंदा ही जला दिया जाता है। गांवों के कछारों में, खंडहरों में बम बनने लगते हैं. बागों में रात को युवकों की मीटिंग, गुप्त रैली होती है। हत्या, विध्वंस और उल्कापात के प्रशिक्षण दिए जाने लगते हैं। जै काली, दुर्गा, जगदम्बा। जै···! नहीं, जै चेयरमैन माओ ! माओ ज़िंदाबाद ! ख़ून की प्यासी धरती है ! हम यह प्यास बुझाएंगे। बिहार पुलिस, बी० एस० एफ०, बिहार मिलिट्री पुलिस, सेंट्रल इंटेलिजेंस के जवान गांवों में घूमने लगते हैं। कांग्रेस विधायक, मंत्री, एम० पी०, नेता, सबने एक सुर में हुकुम दिए— दमन। सी० पी० आई० ने कहा—इनके शिकार किए जाएं। ये देशद्रोही हैं। नरबलि, हत्याएं और बन्दूकबाज़ी होने लगी।

सहरसा से दस मील दूर, राघवपुर-प्रखंड। सर्वोदय ने, ग्राम-स्वराज आंदोलन के लिए राष्ट्रीय मोर्चे का यही केन्द्र बनाया। बिहार तरुण शांति सेना का यहीं प्रयोगक्षेत्र बना। विनोबा, जयप्रकाश, धीरेन्द्र मजूमदार बिहार की भूमि में सर्वोदय के संदर्भ में समाज-शिक्षण और लोकतन्त्र के विचार दे चुके थे। स्वावलम्बी लोक-सेवक-निर्माण और वरनपुर-मधुबनी के प्रयोग कर चुके थे। दरभंगा ज़िला दान हो चुका था। नारायणदेसाई, धीरेन्द्र दा, राममूर्ति, किशोर भाई, जानकी बहन, लखनदीन गांवों में घूम-घूमकर श्रमभारती के माध्यम से, श्रमदान और भूमिदान के सहारे लोगों में जमात-शक्ति की जगह स्वतन्त्र चेतना और स्वतन्त्र शक्ति जगा रहे थे। विनोबा, जयप्रकाश से लेकर धीरेन्द्र मजूमदार तक की वाणी और प्रत्यक्ष कर्म-व्यवहार से एक नई लोकगंगा बहने को थी। जिस अकालग्रस्त धरती पर जनक ने हल

चलाया था, उसी धरती से यह विचार पैदा हुआ कि कभी कोई क्रांति किसी विशिष्ट नेता और विशिष्ट जमात-शक्ति द्वारा चलाई जाती है तो वह क्रांति ही नेता और जमात, पार्टी के लिए निहित स्वार्थ बन जाती है। फिर वे इस बात को बर्दाश्त नहीं कर पाते कि उस जमात या उस पार्टी के बाहर उसी क्रांति के लिए कोई स्वतन्त्र शक्ति खड़ी हो। बुद्ध तो चला जाता है, रह जाता है संघ; गांधी तो चला जाता है, रह जाती है कांग्रेस पार्टी; मार्क्स तो चला जाता है, रह जाती है एक कम्युनिस्ट पार्टी। माओ छूट जाता है दूर, पास आ जाती है उसकी लाल किताब। जिस तरह किसीको तपस्या करते देखकर इन्द्रासन डोल उठता है, उसी तरह क्रांति के क्षेत्र में लगी राजनीतिक पार्टियों से भिन्न तथा स्वतन्त्र रूप से क्रांति के लिए कोई व्यक्ति या युवकों की टोली खड़ी हो जाती है तो क्रांतिवादी पार्टियों के भी आसन डोल जाते हैं। और नेता लोग चौकन्ने हो जाते हैं। फिर वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसे अपने पेट में पचाने का या उसे समाप्त करने का प्रयास करते हैं।

सहरसा के राघवपुरा-प्रखंड में सर्वोदयी कार्यकर्ताओं— तरुण शान्ति सैनिकों के साथ नक्सलवादियों का सामना होता है।

सरकारी व्यवस्था ने, कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टियों ने मिलकर गांव के उन विद्रोही युवकों को, जिन्होंने कुशासन, शोषण, गरीबी, अन्याय, बेकारी और दमन के खिलाफ़ सिर उठाया था, नक्सलवादी नाम दे दिया था। वह नाम देकर उन्हें बंदूक से उड़ाने और जेल में डाल देने के लिए अवसर प्राप्त किया था। राघवपुरा में अली हसन नामक युवक को पुलिस और राज्यव्यवस्था ने नक्सलवादी घोषित करके उसे पकड़कर गोली से उड़ा देना चाहा था। दरअसल अली हसन ने गरीब किसानों, शूद्रों और बेकार मजदूरों और युवकों की ओर से बड़े ज़मींदारों, साहूकारों और नेताओं से मोर्चा लिया था। वह कत्ल करता, डाके डालता और उसके साथ ये युवक किसीकी हत्या करके नर-बलि का आनन्द लेते।

तब अंचल में दो विपरीत रास्तों से रात को युवकों की टोलियां गांव-गांव में घूमतीं। एक रास्ता था सर्वोदयी तरुण शांति सैनिकों का। दूसरा था हाथ में बम, पिस्तौल और चाकू-भाला लिए नक्सली युवकों का। इन दोनों रास्तों के बीच ऐसे असंख्य युवक थे, जो भ्रष्ट शिक्षा, शोषक समाज, भ्रष्ट राजनीति और अंधी जाति-पांति व्यवस्था से आहत, दुखी थे, पर जिनके पास विरोध प्रकट करने का कोई माध्यम न था। भूमिहार, प्रोफेसर, प्रिंसिपल, अफसर

और नेता मैथिल ब्राह्मणों के युवकों, छात्रों और लोगों का दुश्मन। ब्राह्मण-भूमिहार का शत्रु। राजपूत ठाकुर ब्राह्मणों का दुश्मन! कायस्थ-भूमिहार का संघर्ष। सवर्ण और शूद्रों में वैर। भयानक!

सहरसा से मुज़फ्फरपुर के रास्ते में एक जगह एक अजब दृश्य। एक कस्बे के बाग में तेल की मालिश करते हुए बीसियों पहलवानों को देखा। बाग के चारों ओर पढ़े-लिखे युवक खड़े चुपचाप उन्हें निहार रहे थे। मैंने पूछा—ये कौन हैं? क्या है यह? एक युवक ने बताया—कल सुबह यहां चुनाव है। भूमिहारों की ओर से ये लोग 'इलेक्शन बूथ' पर कब्ज़ा करने के लिए बुलाए गए हैं। यह कांग्रेस का क्षेत्र है, सोशलिस्ट उनसे मुकाबला करना चाहते हैं। मैंने पूछा—जीत किसकी होगी? उत्तर मिला—जो 'बूथ' लूटेगा। 'बूथ' कौन लूटेगा? जिसके पास लाठी और पैसे होंगे। यह किसके पास है? जिस का राज है।

कोसी के मैदान में किसीको गाते हुए सुना—'माया के मोहक वन की क्या कहूं कहानी परदेशी, भय है सुनकर हंस दोगे मेरी नादानी परदेशी।' अरे, यह तो दिनकर का गीत है।

मैदान पार करते-करते एक चरवाहे के मुंह से गाते हुए सुना—'जनक दुलारीजी कै करबै नोकरिया, मिथिला में रहबै, मिथिला में हमारो चारो धाम, मिथिला में रहबै...।' अरे, यह तो शुद्ध अवधी भाषा का लोकगीत है—मिथिलावासी कैसे यह लोकगीत गा रहा है?

तभी अचानक याद आया—अवध से कितने-कितने लोग मिथिला की इस भूमि में आए होंगे, जानकी की तलाश में और यहां अवध के गीत बो गए होंगे।

तभी किसीने बताया—मुज़फ्फरपुर के मुसहरी-प्रखंड में नक्सलवादियों और सर्वोदयी कार्यकर्ताओं में आमना-सामना हो गया है। भला ऐसा क्यों? चलते-चलते कुछ सूझने लगा। गांधी, विनोबा, जयप्रकाश और लोहिया—सर्वोदय और गांधी, समाजवाद की धारा वैष्णवों का पंथ है। आतंकवादियों से चलकर नक्सलपंथियों की धारा शायद तांत्रिकों की परम्परा में है। तो शाक्त और वैष्णवों की लड़ाई तो स्वाभाविक है। पहले का आधार अहिंसा और मानव-मूल्यों के प्रति प्रेम है। दूसरे का आधार भय और दंड है। आज राजतंत्र का भी तो आधार कानून और दंड है। तो उस लोक-जीवन का आधार क्या है, जिस धरती के भीतर से तब जानकी निकली थी और उसी आधार के

अभाव में फिर धरती में समा गई? उस लोक-जीवन के आधार को ढूंढा था गांधी ने। सर्वोदय के द्वारा उस आधार को प्राप्त किया जयप्रकाश ने। गांधी और विनोबा कानून और दंड के आधार पर खड़े समाज के चक्र को ही बदलना चाहते थे। भय के स्थान पर विचार को स्थापित करना। बिहार में लोक-जीवन के इसी आधार-परिवर्तन के लिए सर्वोदय ने जितना भी कार्य किया है, वह बहुतों को अपने विरोध में खड़ा करने वाला है। निस्संदेह भयरहित समाज शून्य में स्थिर नहीं रह सकता। उसे संकल्प-निष्ठा-आधारित बनना पड़ेगा। अगर लोक-जीवन, लोक-शक्ति को निष्ठा-आधारित बनाना है तो निष्ठा को कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का अधिकार या कर्मक्षेत्र मात्र बनाने से काम नहीं चलेगा, उसे निश्चय ही समग्र लोक-जीवन को नीचे से ऊपर तक जोड़कर, संलग्न कर सबका कर्मक्षेत्र बनाना होगा।

जनकपुर से चलकर गांव में किसान बनकर आए थे राजा जनक, सूखी धरती पर हल चलाने, तब लोक-शक्ति जानकी प्राप्त हुई थीं, पर किसान को कभी जनकपुर के केन्द्र में नहीं जाने को मिला, तभी राम-वनवास हुआ, सोने की लंका जली। रावण-वध हुआ। राम द्वारा ही अंत में जानकी को वनवास मिला। और जानकी को अंततः उसी पृथ्वी में फिर अंतर्धान हो जाना पड़ा।

राजनीतिक नेता सत्ता अथवा शक्ति के नाम पर उसी लोक-जीवन से कट गया, जिससे जुड़े रहने को गांधी और विनोबा, जे० पी० से लेकर भाई सिद्धिराज, धीरेन्द्र मजूमदार, आचार्य राममूर्ति आदि लोक-आंदोलन ही नहीं आत्मशुद्धि का आंदोलन मानते हैं। और आंदोलन का अर्थ लोक-जीवन के भीतर से, उसके साथ जुड़कर, समर्पित होकर रचनात्मक कार्य को मानते हैं।

ठीक इसी आधारभूमि पर मुसहरी में नक्सलवादियों और सर्वोदयी कार्यकर्ताओं में स्वभावतः मुठभेड़ हो गई। एक का विश्वास था आतंक और दंड पर, दूसरे का विश्वास था रचनात्मक संकल्प-निष्ठा पर—अहिंसा और सत्याग्रह पर।

मुसहरी-प्रखंड में तरौरा गांव और गंगापुर के बीच में आम का जो घना बाग है, उसीमें रात के वक्त नक्सली युवकों की सभा जुटती। छापामार युद्ध से लेकर कत्ल करने के विविध उपायों, साधनों के शिक्षण-प्रशिक्षण चलते। एक रात एक दुश्मन की बलि, दूसरी रात दूसरे और तीसरे की। सूरज डूबने के बाद कोई अपने गांव से बाहर नहीं निकलता। शाम से ही सारे घर भीतर से बंद। सन्नाटा और आतंक। पता नहीं, आज रात किसकी बलि दे दी जाए।

पुलिस उल्टे डकैती, हत्या-अभियोग के सिलसिले में वहां के जितने भी स्वतंत्र प्रगतिशील लोग थे, जनता के हमदर्द थे, पुराने जमाने के कांग्रेसी, समाजवादी, उन्हें मुद्दालेह बनाकर जेल में भरने लगी। गांव वीरान होने लगे। पुराने चुनावों की पुरानी दुश्मनियां, जात-पांत के पुराने वैर, कांग्रेस बनाम विरोधी पार्टियों के प्रति न जाने कब की नफरत, सब नक्सलवाद के नाम पर, शांति और दमन की आड़ में, सत्ता और विरोध के बहाने अंधी आग के रूप में मुसहरी में जलने लगी।

तब इसके विरोध में खड़े हुए सर्वोदयी कार्यकर्ता। उस अंचल के निर्दलीय युवक। और एक नया स्वर उस मटमैले आकाश के नीचे उभरने लगा। व्यवस्था के प्रति जो विद्रोह-भावना निर्मित होती है, वही क्षोभरहित हो सकती है और उस व्यवस्था को बदलने का प्रयास संघर्षरहित हो सकता है, क्योंकि ऐसी हालत में विद्रोह व्यवस्था के खिलाफ होगा, न कि शोषण और निर्दलन करने वाले के। विद्रोही को जब यह बात समझ में आ जाएगी कि शोषण और निर्दलन करने वाला भी दूषित व्यवस्था का शिकार है और वह विवश है तो उसके प्रति स्वभावतः करुणा की भावना पैदा होगी न कि नफरत की। शोषण और अन्याय करने वाला भी महसूस करेगा कि इस अनर्थपूर्ण व्यवस्था को बदलने पर ही सुख और शांति मिल सकती है। लेकिन अगर विद्रोह-भावना केवल प्रतिक्रियाजनित होगी तो वह क्षोभरहित हो ही नहीं सकती। तब इसकी अभिव्यक्ति अहिंसक क्रांति न होकर हिंसक विप्लव में होगी। और ऐसा विप्लव हमेशा व्यवस्था के पक्ष में ही जाएगा।

यहीं होती है टकराहट। और नक्सलवादी एक सर्वोदयी कार्यकर्ता की मुसहरी अंचल में हत्या करते हैं। और जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष और मंत्री की एक निश्चित तारीख को हत्या कर देने के परवाने भेजते हैं। यह जून, सन् सत्तर की घटना है। जे० पी० तब स्वास्थ्य-लाभ के लिए हिमालय की गोद, पौड़ी में विश्राम करने गए थे। वहां उन्हें यह सूचना मिलती है। इससे जे० पी० को एक अजीब धक्का लगा और साथ ही साथ उन्हें खुशी भी हुई। धक्का इसलिए कि दो सहयोगियों का जीवन संकट में पड़ा था और खुश होने के कारण थे कि इन मृत्यु-परवानों से जे० पी० को लगा कि नक्सलवादियों की कार्यपद्धति में एक बड़ा परिवर्तन हुआ है और यह भास हुआ कि देश के महान नेताओं, जैसे रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, टैगोर, गांधी, सुभाष बोस आदि की मूर्तियों, चित्रों और उनकी पुस्तकों जैसी निर्जीव वस्तुओं

पर प्रहार करना छोड़ उन्होंने अब उन नेताओं के जीवित अनुयायियों को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया है।

तीन जून को जे० पी० मुजफ्फरपुर पहुंचते हैं। उनके मस्तिष्क ने बार-बार कहा कि नक्सलवादियों की यह हत्या-धमकी यह सिद्ध कर दिखाने के लिए एक त्वरायुक्त आह्वान है कि किस प्रकार हिंसा की चुनौती का उपयोग ठोस रचनात्मक कार्य द्वारा विनोबाजी के ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य आंदोलन के रूप में शुरू की गई अहिंसक समाज-परिवर्तन एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को तेज करने के लिए किया जा सकता है। देश और प्रांत की चतुर्दिशा में फूट पड़ने वाली निराशा की विकृत तस्वीर ने नक्सलवाद के नाम से लोकचेतना को किस सीमा तक प्रभावित किया है, यह बात उभरकर आई।

आठ जून को मुजफ्फरपुर की विशाल सभा में जे० पी० को सुना—'कोई यह न समझे कि सत्याग्रह के तरकश के सारे तीर निकल चुके हैं। सर्वोदय आंदोलन ने सत्याग्रह का लोक-शिक्षण का प्रथम चरण बड़े पैमाने पर पूरा किया है। अब विचार की शक्ति प्रकट करने के और कार्यक्रम को और अधिक सघन तथा प्रभावकारी बनाने के लिए सत्याग्रह का दूसरा चरण शुरू होने जा रहा है—कल से मैं और प्रभावती मुसहरी-प्रखंड के गांव-गांव में घूमने निकलेंगे। यह न समझा जाए कि हम नक्सलपंथियों की धमकियों से या हत्या से डरने वाले हैं। हम तो बराबर घूमते रहते हैं। चाहे कोई भी हमें मार सकता है।'

नौ जून की रात। मुजफ्फरपुर से नौ मील की दूरी पर एक पंचायत, सलहा गांव का मिडिल स्कूल—यहीं लगाव जे०पी० का पहला शिविर। और जैसे यहीं आमंत्रित किया नक्सली युवकों को, कि आओ अगर तुममें इतना नैतिक साहस है तो पहले मेरी हत्या करो।

खुले आसमान के नीचे सब कुछ स्तब्ध था। सारा वातावरण आशंकाओं से ग्रस्त था। रात के इसी परिवेश में नक्सली युवक आए थे जे०पी० के सामने। और वह लम्बा, घना, अनोखा साक्षात्कार हुआ था।

एक ने कहा—हमें हिंसक क्रांति में विश्वास है।

दूसरा बोला—इसके लिए भी प्रत्यक्ष लोकशक्ति आपके साथ होनी चाहिए।

एक बोला—शक्ति बंदूक की नली से आती है।

दूसरा मुस्करा पड़ा—फिर तो क्रांति के बाद वही बंदूक जिसके हाथ में है, वही निरंकुश राजा बनेगा ? समाज का क्या होगा ?

चुप्पी छा गई।

जे० पी० ने कहा—क्रांति लोकशक्ति द्वारा होती है, उसे अहिंसक होना पड़ेगा। उसीमें पुराने समाज का बदलना और नये का बनना दोनों साथ-साथ और कदम-ब-कदम होते हैं।

एक गांव से दूसरे गांव में शिविर लगने लगते हैं। उन परिवारों में जाया जाता है जिनके परिवार के सदस्य नक्सलवादी नेता या कार्यकर्ता बताए जाते हैं। और इन्होंने उन परिवारों से भी भेंट की, जिन परिवारों के लोग जेल में थे।

हर जगह फैली काली छाया ने उन परिवारों के आंसुओं की राह फूटकर सबके दिल भर दिए। इस दुश्चक्र के शिकार होने के बाद पहली बार किसीने उनके दुख-दर्द की कहानी करुणा-भरे हृदय से सुनी थी। विवशता और विषाद की भावना प्रायः इन सभी परिवारों के अंदर से प्रकट हो रही थी, जिसे वे शब्द देने में असमर्थ थे। युग-युग से उत्पीड़ित ये गरीब और संघ-साधना की सुविधा के बीच के ये सम्पन्न परिवार समान रूप से दुखी और असहाय लग रहे थे।

और उन गांवों में घूमते-घूमते सच्चाई की परतें एक के बाद एक उतरती चली जा रही थीं। मुसहरी या मिथिला के नक्सलवाद की जड़ में माओवाद नहीं था। यहां के नक्सलवाद की जड़ में भ्रष्ट चुनाव के जहर, जात-पांत के प्रति हिंसाएं, सरकारी तंत्र के झूठ, अत्याचार, सामाजिक अन्याय, शोषण और मुकदमेबाजियां थीं। इस अंचल में दर्जनों जवान फरारी जीवन बिता रहे हैं। अनगिनत युवक वर्षों से जेल में सड़ रहे हैं और न जाने कितने लोग पुलिस और सरकारी व्यवस्था के झूठे मुकदमों में फंसे हैं।

जे० पी० के आस-पास वे सारे युवक आ रहे थे, जिन्हें अब तक हिंसा में विश्वास था। उन्हें दूर खड़े वे युवक अपलक देखने लगे थे जिन्हें राजनीतिक दलों और नेताओं से अब तक घृणा हो चुकी थी। उनके मानस में कोई सपना उभरने लगा। सी० पी० एम०, जनसंघ, समाजवादी पार्टियां, शोषित दल के लोग, पुरानी कांग्रेस के सदस्य, खादी ग्रामोद्योग और सर्वोदय के कार्यकर्ता जो लोकधारा से अलग हटकर केवल अपने-अपने दल के हितों और संदर्भों में ही सोचने के लिए विवश थे, वे एक नई सच्चाई के आमने-सामने खड़े थे।

सभी क्रांतियों में केंद्रीय प्रश्न सत्ता का ही होता है और सभी क्रांतियों का आयोजन जनता के लिए, लोक के लिए सत्ता प्राप्त करने के नाम पर किया जाता है, तथापि हमेशा क्रांति करने वालों में से ऐसे मुट्ठी-भर लोगों द्वारा सत्ता हड़प ली जाती है, जो सबसे ज्यादा निर्मम होते हैं। और ऐसा होना अनिवार्य है, क्योंकि उनकी मान्यतानुसार सत्ता बंदूक की नली से निकलती है। प्रजातंत्र के नाम पर भ्रष्ट चुनाव-पद्धति भी वही बंदूक है जो चुनाव से पहले ही काले पैसों, गुंडों द्वारा लुटवाकर अपने हाथ में हथिया ली जाती है। और यह बंदूक जन या लोक के हाथ में नहीं, बल्कि हिंसा के उस संगठित तंत्र के हाथ में रहती है जो हर सफल क्रांति और अब केवल चुनाव-क्रांति में से उसकी पार्टी, सेना या उसके दल के रूप में पैदा होती है।

तो हिंसा और तंत्र से भी ऊपर हर मनुष्य की अपनी एक अस्मिता है। खाली हाथ भी मनुष्य अन्याय और झूठ का विरोध कर सकता है। इस नये विश्वास की अभिव्यक्ति में मिथिला की भूमि से चलकर छोटा नागपुर का पठार पार कर गंगा की तराई से बिहार के छात्र और युवक अठारह मार्च, उन्नीस सौ चौहत्तर को सुबह दस बजे पटना की असेम्बली को घेर लेते हैं—शुद्ध सत्याग्रही भाव से। सारे युवक, छात्र स्वयं अपने नेता थे। बारह मांगें थीं। आठ शिक्षा-संबंधी और चार सार्वजनिक—भ्रष्टाचार, महंगाई, बेकारी और शिक्षा में आमूल परिवर्तन से संबंधित। राज्यपाल विधान सभा में तब तक भाषण न दें जब तक ये मांगें पूरी न हों। उधर दिन के ठीक साढ़े ग्यारह बजे पटना शहर में आग लगा दी जाती है। 'सर्चलाइट' जलने लगता है, दूकानें लूटी जाने लगती हैं। शासन जैसे खत्म हो जाता है। यह सब किया गया छात्र और युवक-आंदोलन को बदनाम करने और उसे हिंसक रूप देने के लिए। तीन बजे के बाद पुलिस की फायरिंग शुरू होती है। और शाम होते-होते पटना शहर में करफ्यू लग जाता है।

उस दिन दिखाई पड़ गया कि बिहार की आत्मा किस तरह घायल हुई है, किस तरह उसके शरीर से खून बह रहा है—सिर अलग, धड़ अलग। काली और दुर्गा के मंदिर में पशुबलि के बीभत्स दृश्य उभर आए हैं।

आठ अप्रैल को जे० पी० के नेतृत्व में पटना में हजारों सत्याग्रहियों का मौन जलूस निकलता है। सभीके मुंह पर केसरिया पट्टियां, सभीके दोनों हाथ कमर के पीछे। पूरा जलूस मौन। जो कुछ कहना है वह हवा में खिंच गया है—हमारे हृदय क्षुब्ध हैं और जबान पर ताला लगा हुआ है। हमला चाहे

जैसा हो, हाथ हमारा नहीं उठेगा। महंगाई, बेकारी, भ्रष्टाचार, सत्ता ही है ज़िम्मेदार। लाठी, गोली, हिंसा, लूट, किसीको इनकी मिले न छूट।

पटना अग्निकांड से गया गोलीकांड, उसके बाद तीन-चार-पांच अक्तूबर को संपूर्ण बिहार बंद होता है। इस बीच सारी जेलें सत्याग्रहियों से भर दी जाती हैं। जनसंघ के नाना देशमुख, तरुण शांति सेना के नारायण भाई, सर्वोदय के त्रिपुरारी सरन, राममूर्ति, पुरानी कांग्रेस के महामाया बाबू, समाजवादी दल के रामानंद तिवारी, कर्पूरी ठाकुर, बसावनसिंह और भूमिगत फरार नक्सलवादी और असंख्य निर्दलीय छात्र, युवक, किसान, मध्यवर्ग के लोग—स्त्री, बूढ़े, बच्चे, शूद्र, सवर्ण, वैष्णव और तांत्रिक उस भूमि पर सत्याग्रहरत हैं, जिसके नीचे जानकी अंतर्धान हुई हैं। लोकनायक जे० पी० उस भूमि पर हल जोत रहे हैं। पृथ्वी से फूटकर जानकी के आने की आहट, उसका छंद, उसका संगीत सुनाई पड़ रहा है। इतने दमनों, इतनी सीमाओं और अंतर्विरोधों के बावजूद निरंतर जानकी की तलाश में व्यग्र उस लोक-भावना के साथ हमारे भीतर जो शक्ति जन्म ले रही है।

वह क्या है!

लोकनायक जयप्रकाश। जयप्रकाश जो बिहार की धरती पर हल जोत रहे हैं। वह तो अभी कल तक सर्वोदयी जयप्रकाश थे, यह लोकनायक का विशेषण किसने कब दे दिया? छात्र-संघर्ष और युवा-विरोध से जो लोक चेतना-फूटी उसका नायकत्व केवल जयप्रकाश को मिला।

क्यों? जयप्रकाश को ही क्यों?

मिथिला में उस अकालग्रस्त सूखी धरती पर जनक को ही क्यों हल चलाने के लिए दिया गया? क्योंकि राजा जनक, राजा जनक थे, पर वह विदेह भी थे। वह सब कुछ थे, पर कुछ भी नहीं थे।

एक मनोरंजक कथा है। शायद ऋषि का नाम याज्ञवल्क्य था। वह संपूर्ण चिंताओं से मुक्ति का रहस्य तलाश रहे थे। किसीने कहा, भाई, राजा जनक के पास जाओ। ज़रूर कोई न कोई उपाय बता देंगे। सो ऋषि गए राजा जनक के पास। बोले, हे विदेह, मैं चिंतामुक्त होना चाहता हूं। इसका कोई उपाय बताइए। विदेह ने कहा, इसमें क्या बात है, आइए मेरे साथ। दोनों चल पड़े। रास्ते में एक सूखा पेड़ मिला। विदेह ने कहा, महाराज, दोनों हाथों से इस पेड़ को मज़बूती से बांध लो। पकड़ लो। ऋषि ने उसे अपनी बांहों में भर

लिया। तब राजा जनक ने कहा, ऋषि, अब आज्ञा दो कि यह पेड़ आपको छोड़ दे। ऋषि बोले, महाराज, यह ठूंठा पेड़ किसीकी कैसे आज्ञा मान सकता है? तो? फिर आप कैसे इस पेड़ से अलग होंगे? ऋषि ने कहा, इसमें क्या है, मैं खुद इसे छोड़ देता हूं। तो छोड़ दो। ऋषि ने छोड़ दिया।

विदेह चुप खड़े थे। ऋषि अवाक् देखते रह गए। इतनी सरल, सीधी बात! पेड़ ने मुझे नहीं पकड़ा था, मैंने पेड़ को पकड़ रखा था।

कुछ ऐसे ही थे जयप्रकाश। विदेह जैसे। सब कुछ कर देना, करते रहना, पर कुछ नहीं लेना, बांधना। चाहे साम्यवादी, मार्क्सिस्ट जे० पी० हों, चाहे कांग्रेस सोशलिस्ट के संचालक जयप्रकाश हों, चाहे समाजवादी, फिर सर्वोदयी जयप्रकाश नारायण हों, देना, केवल देना, बांधना-लेना कुछ नहीं। तभी बिहार के उन छात्रों और युवकों ने बहत्तर वर्ष के जिस वृद्ध को अपना नायक ही नहीं, लोकनायक बनाया, उसमें कोई तो बात थी।

वह बात वही थी—अपार हिम्मत, त्याग, निर्मल सच्चाई, ईमानदारी और अकलुष चरित्र की बात, जो आसानी से समझ में नहीं आती। अकसर जो खीझ तक उत्पन्न कर जाती है। यह कैसा विचित्र आदमी है! कभी लोकप्रिय व्यवहार नहीं करता, चाहे वह कभी शेख अब्दुल्ला की रिहाई या नागालैंड की स्वतंत्रता की बात हो, या चीन का आक्रमण, पाकिस्तान और बंगला देश का प्रश्न हो। दुनिया के किसी भी कोने में जहां भी मानव-मुक्ति और न्याय का सवाल पैदा हुआ, वहां जयप्रकाश की साझेदारी मौजूद।

नेपाल के भूतपूर्व प्रधानमंत्री और गहरे समाजवादी बी० पी० कोइराला ने जयप्रकाश के बारे में कहा है कि जे० पी० इस भू-भाग के अकेले विरोध-स्वर हैं—उस सत्ता के खिलाफ जो लोकतंत्र का विपक्षी है। आंद्रे मालरो ने कहा कि गांधी के बाद एक सबसे बड़े आध्यात्मिक नेता हैं जयप्रकाश।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के बड़े सेनानी। महात्मा गांधी के आह्वान मात्र से इंटर फाइनल की पढ़ाई छोड़कर बाहर निकले थे। उन्नीस सौ बयालीस की क्रांति और 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सच्चे नायक थे जयप्रकाश। भारतीय साम्यवादियों से असली मुठभेड़ लेने और उनके वास्तविक चरित्र को प्रकट करने वाले, उन्नीस सौ सड़सठ में बिहार-अकाल में मुक्तिवाहक के रूप में लड़ने वाले, प्रथम जीवनदानी सर्वोदयी और सन् बहत्तर में अकेले अपने व्यक्तित्व के बूते पर चम्बल के डाकुओं का वह आत्मसमर्पण—चरित्रगत ये कुछ ऐसी घटनाएं

हैं जो जे० पी० को कहीं 'अन्तरात्मा का प्रहरी' सिद्ध करती हैं और कहीं उन्हें 'लोकनायक' बनाती हैं।

वे कौन-सी परिस्थितियां थीं, जिन्होंने जे० पी० को ऐसा स्वरूप दिया? वे कैसी जीवनगत प्रेरणाएं थीं, जिन्होंने जे० पी० को 'जयप्रकाश' बनाया?

दूसरा खंड : जयप्रकाश

एक निम्न-मध्यवर्ग कायस्थ परिवार में, उत्तर प्रदेश के बलिया ज़िले के सिताब दियारा गांव में ग्यारह अक्तूबर, उन्नीस सौ दो को जयप्रकाश का जन्म हुआ। पिता का नाम हरसूदयाल, मां का नाम फूलरानी। छः बच्चे हुए थे। क्रम में जयप्रकाश चौथे थे। तीन भाई, तीन बहनें। पिता हरसूदयाल नहर विभाग में ज़िलेदार पद पर थे। बहुत ही नेक, संत स्वभाव के थे यह पिता। मां फूलरानी दया-ममता की मूरत थीं।

जयप्रकाश का बचपन का नाम 'बउलजी' था। प्राइमरी शिक्षा सिताब दियारा गांव में और आगे की शिक्षा के लिए यह पटना आए। पटना के कॉलिजिएट स्कूल में इनका नाम सातवें दर्जे में लिखा गया। पढ़ने में बहुत तेज़ थे। उन्नीस सौ उन्नीस में इन्होंने हाई स्कूल में प्रथम श्रेणी में पास होकर बिहार का 'मेरिट स्कालरशिप' प्राप्त किया।

तब यह अठारह वर्ष के पूरे हो गए थे। और तभी, बिहार के जिस महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ने महात्मा गांधी को चंपारन में बुलाकर निलहे साहबों के खिलाफ प्रथम सत्याग्रह कराया था, उसी ब्रजकिशोर बाबू ने अपनी लड़की प्रभावती के साथ जयप्रकाश का विवाह किया।

इस विवाह के बाद ज्यों-ज्यों जयप्रकाश किशोरावस्था की सीमा को पार कर युवावस्था की ओर पैर बढ़ा रहे थे, त्यों-त्यों देश का राजनीतिक वायुमंडल गरम से गरम होता जा रहा था। जयप्रकाश का देशभक्त हृदय इस गरम लहर से छू गया। तब विवाह हुए अभी मुश्किल से एक वर्ष हुआ था। गांधी के असहयोग आंदोलन का तभी शुभारंभ हुआ था। उन्हीं दिनों मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पटना आए थे। उनके भाषण से किशोर जयप्रकाश बेचैन हो गए। विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति पाने वाले जयप्रकाश ने

कालेज छोड़ने का निश्चय कर लिया। तभी एक घटना घटी। उन्नीस सौ बाइस के फरवरी मास में चौरीचौरा का कांड हुआ और गांधी ने अपना असहयोग आंदोलन रोक दिया।

तब आगे उच्च शिक्षा के लिए जयप्रकाश भारत से अमेरिका के लिए रवाना हुए। यह सन् बाइस की बात है। कलकत्ता से पानी के जहाज़ से चलकर पूरे दो महीनों में यह सानफ्रांसिस्को आए। पैसे नहीं थे। पढ़ने के अन्य कोई साधन नहीं थे। मज़दूरी की। कड़ी मेहनत के काम। बर्कले यूनीवर्सिटी में मज़दूरी की कमाई से पढ़ाई संभव नहीं हो रही थी। फीस ज्यादा थी। सो बर्कले छोड़कर हवाना स्टेट यूनिवर्सिटी में दाखिला लिया। वहां से भी आगे विस्कांसिन जाना पड़ा। स्वाध्याय, कठोर परिश्रम और घोर आत्मसंयम का जीवन जीना पड़ा।

अमेरिका के इसी जीवनकाल में भारतीय कुमार जे० पी० पूर्णतः वयस्क होकर मार्क्सवादी होते हैं। पोलैंड निवासी यहूदी जाति के एबराम लैंडी की मित्रता और सत्संग ने इनमें काफी रंग दिया था। यहीं मार्क्स और ऐंजिल के साहित्य और विचारों के अतिरिक्त इन्होंने भारतीय साम्यवादी एम० एन० राय को पहली बार पढ़ा। साथ ही इन्होंने लेनिन, ट्राटस्की, रोज़ा लक्जमबर्ग और कार्ल मार्क्स को गंभीरता से पढ़ा और संयुक्त राज्य अमेरिका में वह कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य भी हो गए।

वह विज्ञान के विद्यार्थी थे। पर लैंडी और एक दूसरे मैक्सिकन साथी एमनल गोमे ने आग्रह किया कि वह विज्ञान छोड़कर समाजशास्त्र की उच्च शिक्षा प्राप्त करें और उसके लिए रूस जाएं—मास्को यूनिवर्सिटी में। चार सौ डालर की ज़रूरत थी यात्रा-भाड़े के निमित्त। जे० पी० किसीका अनुदान नहीं लेना चाहते थे। चार सौ डालर कमा भी नहीं पाए और वह बच गए रूसी धर्मपिता के मानसपुत्र होने से।

फिर भी फिज़िक्स और मैथमैटिक्स छोड़कर जे० पी० ने समाजशास्त्र का उच्च अध्ययन शुरू किया। एम० ए० में उनके शोध-प्रबंध का विषय था 'सोशल वैरियेशन'। अमेरिका के पूरे विद्यार्थी-जीवन में जे० पी० ने तरह-तरह की मज़दूरी और सख्त मेहनत करके जीवन और समाज को समझा। साथ ही विभिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़कर ऐसा व्यापक-गहन ज्ञान प्राप्त किया जो जीवन-रहस्यों पर से पर्दा हटा सके। शायद यही कारण है कि विज्ञान और

समाजशास्त्र के अध्ययन के सिलसिले में जयप्रकाश ने अन्य कितने ही विषयों के गंभीर अध्ययन किए।

उन्नीस सौ बाइस के अक्तूबर में, सिर्फ बीस वर्ष की उम्र में जिस जयप्रकाश ने अमेरिका की ज़मीन पर पांवर खा था, वही अब जे० पी० होकर सितंबर उन्नीस सौ उनतीस में पूरे सत्ताइस वर्ष के परिपक्व होकर स्वदेश लौटते हैं।

बेशक जे० पी० ने अमेरिका में पूरी गहराई से मार्क्सवाद पढ़ा और सोवियत कम्यूनिज्म की दीक्षा ली। फिर भी स्वतंत्रता के उस बुनियादी लक्ष्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मार्क्सवादी सिद्धांत और लेनिन की रोमांचकारी सफलताएं गांधी की सविनय अवज्ञा और असहयोग की अपेक्षा अधिक निश्चित और शीघ्रगामी लगीं। आगे चलकर स्वतंत्रता के अर्थ में समता और बंधुत्व की एक और ज्योति जल गई।

यूं भी जे० पी० जब अमेरिका से भारत लौटे, तो उस समय पूर्ण स्वराज्य का राष्ट्रीय आंदोलन गर्म था। जे० पी० अपने पूरे उत्साह से उस संघर्ष में कूद पड़े। पर उन्होंने देखा, कम्यूनिस्ट उस आज़ादी के संघर्ष में कहीं नहीं हैं। जे० पी० को जब यह पता चला कि कम्यूनिस्ट लोग राष्ट्रीय आंदोलन को बुर्जुआ आंदोलन और महात्मा गांधी को बुर्जुआ वर्ग का पिट्ठू कहकर निन्दा कर रहे हैं तो मार्क्सवादी जे० पी० शर्म से डूब गए और उसका विरोध किया। भारतीय कम्यूनिस्ट दल से अलग होकर जे० पी० स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिक हो गए। पर तब तक स्वतंत्रता और स्वराज्य का अर्थ उनके लिए राष्ट्रीय आज़ादी से भी ज्यादा व्यापक हो गया। स्वतंत्र भारत का अर्थ अब उनके लिए समाजवादी भारत हो गया। और इसी चेतना-भूमि से उन्होंने अपने दोस्तों के साथ नासिक सेण्ट्रल जेल में सन् बत्तीस में कांग्रेस समाजवादी दल को जन्म दिया।

उन्नीस सौ तैंतीस की एक सुबह नवयुवक जे० पी० अपनी जेल की सज़ा काटकर निकले थे। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में वह एक ऐसा क्षण था, जहां से जे० पी० के माध्यम से एक शक्ति, एक प्रकाश प्रकट हुआ, जिसका अपना विचार था, दृष्टि थी।

नासिक जेल से बाहर निकलकर जे० पी० ने अपने मित्रों के साथ यह तय किया कि पूरे भारत में जितने लोग भी समाजवादी विचार रखते हों, उन्हें दावत दी जाए कि वे इस नये दल में शामिल हों और एक अखिल भारतीय

समाजवादी पार्टी कायम की जाए। कांग्रेस की तब विधानवादी प्रवृत्ति को रोकने और उसे भारतीय आज़ादी की लड़ाई में पूर्णतः युद्धोन्मुखी करने की चेष्टा की जाए। साथी थे—डा० लोहिया, आचार्य नरेन्द्रदेव, मीनू मसानी, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, एन० जी० गोरे, एस० एम० जोशी, प्रोफेसर एम० एल० दांतवाला, यूसुफ मेहरअली, पुरुषोत्तम त्रिकमदास, नानासाहेब गोरे, गंगाशरणसिंह, नवकृष्ण चौधरी, फरीदुलहक अंसारी, दामोदरस्वरूप सेठ, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, के० के० मेनन, सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी, मुंशी अहमद दीन तथा शिवनाथ बनर्जी। विश्लेषण होने लगे। इतिहास, राजनीति, धर्म, पुराण, ज्योतिष, दर्शन में साथी लोग भारतीय यथार्थ को तलाशने लगे। भारतीय मध्यवर्ग की पहली क्रांतिकारी चेतना का इस रूप में उदय होने लगा। कांग्रेस के भीतर ही एक क्रांतिकारी चेतना सविनय अवज्ञा से आगे बढ़कर व्यापकता और गहराई में काम करने लगी।

मज़दूर संस्थाओं की आपसी फूट को दूर कर केवल एक ही शक्तिशाली ट्रेड यूनियन कांग्रेस बनाई जाने लगी। किसान सभाएं संगठित होने लगीं। युवावर्ग, विद्यार्थी समाज को समाजवादी विचारों से अनुशासित किया जाने लगा। तभी अचानक पन्द्रह जनवरी, सन् चौंतीस के अपराह्न में बिहार का वह भयंकर भूकंप आया। सारा बिहार त्राहि-त्राहि कर उठा। मुंगेर और मुज़फ्फरपुर, ये दोनों अंचल बिलकुल तबाह हो गए।

यहीं भूकम्प सहायता-कार्य करते हुए जे० पी० ने बिहार के नौजवानों को देखा और यह तय किया कि वह अपने राष्ट्रीय कार्य का आधारक्षेत्र बिहार को ही बनाएंगे। तभी पटना में देश-भर के समाजवादियों की एक कांफ्रेंस बुलाई गई। यही जननी सिद्ध हुई कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की। भूकम्प-पीड़ित बिहार की राजधानी में सत्रह मई, सन् चौंतीस को वह सम्मेलन हुआ था अंजुमन इस्लामिया हॉल में। अध्यक्ष थे आचार्य नरेन्द्रदेव। करीब सौ प्रतिनिधि आए थे पूरे भारतवर्ष से। अधिकतर लोग स्वराज पार्टी के पुनर्जीवन के खिलाफ थे।

सन् तैंतीस से छत्तीस तक जे० पी० के उदबुद्ध मानस के महत्त्वपूर्ण वर्ष रहे हैं। इसी बीच 'समाजवाद क्यों' पुस्तक लिखकर आल इंडिया कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, बनारस, से १९३६ में प्रकाशित की। इसके चारों निबंध—समाजवाद का आधार, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी क्या है ? विकल्प, उपाय और तरीके—जे० पी० के मौलिक क्रांतिकारी विचारों के महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ हैं।

पहली सितम्बर उन्नीस सौ उनतालीस को द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ। जे० पी० ने इसे 'साम्राज्यवादी युद्ध' कहा और युद्ध-विरोधी प्रचार और अंग्रेज़-विरोधी कार्यों के अपराध में जे० पी० देवली कैम्प जेल में डाल दिए गए। इसी जेल में इन्होंने पहला सत्याग्रह किया और अपने साथियों के नाम गुप्त पत्र लिखे। कुछ पत्र पकड़े भी गए और उनसे अंग्रेज़ी शासन को यह प्रकट हो गया कि जयप्रकाश सबसे बड़ा, सबसे ज़्यादा खतरनाक अंग्रेज राज्यद्रोही है।

सन् बयालीस का आंदोलन। उस समय अपने समाजवादी साथियों के साथ जे० पी० हज़ारीबाग जेल में बंदी थे। 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' और गांधी का 'करो या मरो' ये दोनों उद्घोष हवा में लहरा रहे थे, पर कोई इसका नेतृत्व करने वाला न था। सब जेल में डाल दिए गए थे।

इसीका नेतृत्व करने और अपने जीवन का बलिदान चढ़ाने के लिए जे० पी० ने तब वह अत्यन्त साहसिक कार्य किया था--हज़ारीबाग जेल की दीवार लांघकर बाहर निकलना। साथ में थे योगेन्द्र शुक्ल, सूर्यनारायण सिंह, गुलाटी और रामनंदन मिश्र।

फरार जे० पी० ने भारत के अनेक क्षेत्रों में गुप्त रूप से घूमकर अगस्त-क्रांति का संचालन किया और उस संघर्ष का बड़ी गहराई से अध्ययन किया। तैंतालीस के जनवरी मास में स्वतंत्रता के सेनानियों के नाम अपना पहला ऐतिहासिक पत्र भेजा। छः महीने बाद दूसरा पत्र गुप्त रूप से सेनानियों के नाम भेजा। इसके अलावा कुछ और लंबे पत्र और विज्ञप्तियां भेजीं अमेरिकन फौज के अफसरों और भारतीय सैनिकों के नाम, विद्यार्थियों, किसानों और बिहार की जनता और पुलिस के नाम।

नेपाल सीमा पर डा० लोहिया के साथ 'आज़ाद दस्ता' का संगठन, गिरफ्तारी और वहां से फिर भाग निकलना। कितने आवास बदले गए। कितने रूप धारण किए गए। जयप्रकाश अगस्त क्रांति के सच्चे नायक तो बन ही गए थे, उनकी फरारी की गतिविधियों ने स्वातंत्र्य के प्रयत्नों में अनेक रोमांटिक गाथाएं जोड़ दी थीं। अब जयप्रकाश के गुप्त आवास की सूचना मात्र देने के लिए अंग्रेज़ शासन द्वारा पांच हज़ार रुपया पुरस्कार घोषित कर दिया गया। कुछ ही दिनों बाद पुरस्काररराशि दुगुनी कर दी गई।

नेपाल का 'आज़ाद दस्ता' करीब-करीब टूट चुका था। भूमिगत अगस्त क्रांति के अब तक जयप्रकाश के अनेक साथी, सहायक गिरफ्तार हो चुके थे।

डा० लोहिया अभी मुक्त थे। मित्रों का आग्रह था कि जयप्रकाश किसी दूसरे देश में चले जाएं या कहीं थोड़े दिन छिप जाएं। पर जयप्रकाश थे कि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं, फिर भी बंगाल में जब अकाल पड़ा तो वहां काम करने के लिए मौजूद। वहां मलेरिया बुखार ने दबोच लेना चाहा। तभी कलकत्ता से दिल्ली और दिल्ली से पंजाब का दौरा करना चाहा।

वह रेल गाड़ी थी 'फ्रंटियर मेल'। दिल्ली के एक पत्रकार एस० एल० कपूर ने पंजाब पुलिस को दिल्ली से ही वह भेद बता दिया था कि जयप्रकाश अमुक डिब्बे में बैठकर जा रहे हैं। लाहौर का एस० पी० विलियम राबिन्सन था, जिसके हाथों जे० पी० मुगलपुरा स्टेशन पर बंदी बना लिए गए।

एक खास सैनिक मोटर में बंद कर जे० पी० को लाहौर के किले में ले जाया गया और वहीं किले की जेल में चौदह दिसम्बर उन्नीस सौ तैंतालीस को अंग्रेज़ भारत सरकार ने उन्हें राजबंदी घोषित किया। फिर शुरू हुआ जयप्रकाश का वह निर्मम 'इंटेरोगेशन' (पूछताछ) और उनपर बरसने लगीं अनन्त यातनाएं।

पैंतालीस के शुरू में जयप्रकाश को पूरे सोलह महीनों के कठोर कारावास के बाद पंजाब सरकार ने लाहौर जेल से आगरा जेल में बदली कर दिया। उनके साथ डा० लोहिया भी थे।

आगरा जेल में जयप्रकाश अनिश्चित काल के लिए सज़ा भोग रहे थे। उसी बीच ब्रिटेन के संसद सदस्यों का एक शिष्ट मंडल भारत आया। शिष्ट मंडल के प्रमुख रिनोल्ड आगरा जेल में जयप्रकाश और डा० लोहिया से मिले। उसके बाद खबर उड़ने लगी कि जयप्रकाश छोड़ दिए जाएंगे। किन्तु यह तब तक संभव न हुआ जब तक 'कैबिनेट मिशन' हिन्दुस्तान नहीं पहुंचा। कहा जाता है कि गांधी ने अंग्रेज़ों की ईमानदारी के सबूत में यह बात रखी थी कि जयप्रकाश को जेल से रिहा किया जाए।

ग्यारह अप्रैल, सन् छियालीस को यह खबर समूचे देश में बिजली की तरह कौंधी कि जयप्रकाश अपने साथी डा० लोहिया के साथ आगरा जेल से रिहा कर दिए गए।

जयप्रकाश को देश ने एक स्वर से अगस्त क्रांति का अग्रदूत कहकर जो तब स्वागत किया, अभिनन्दन दिया, वह सदा याद किया जाएगा।

नासिक, लाहौर, देवली, हज़ारीबाग--गुलाम भारत के उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम को अपनी लौह शृंखला में बांधने वाली काराओं ने जे० पी०

को, उनकी निर्बंध आत्मा को निगलने की जितनी कोशिशें कीं, जयप्रकाश के व्यक्तित्व की ज्वाला उतनी ही प्रज्वलित होती चली गई।

जे० पी० की रिहाई से देश के नवयुवकों में फिर से उत्साह की लहर फैल गई। आगरा से सीधे दिल्ली आए। दिल्ली में जे० पी० से मिलने के लिए कैबिनेट मिशन के सदस्य इम्पीरियल होटल आए और वहां तेरह अप्रैल को मिशन के सदस्यों ने लगभग एक घंटा बातचीत की।

दिल्ली से जे० पी० बनारस होकर सीधे पटना पहुंचने वाले थे। पटना में अगस्त क्रांति के नायक के स्वागत के लिए दिन-रात तैयारियां चल रही थीं। पर निश्चित तिथि अनुसार तैयारियां पूरी न हो सकी थीं, इसलिए बिहार के साथियों ने तय किया कि जे० पी० को इस बीच दो-तीन दिनों के लिए बनारस में ही रोक लिया जाए। पर यह जोखिम का काम करे कौन? अंत में जे० पी० के बड़े मुंहलगे दुलारे मित्र बसावनसिंह को यह काम सौंपा गया।

जे० पी० फिर गंगापार से पटना आए थे। जेलों से छूट-छूटकर सारे मित्र पटना के गंगातट पर उनके स्वागत में बांहें फैलाए, आंखों में आंसू भरे खड़े थे।

और उसी शाम पटना के बांकीपुर मैदान (गांधी मैदान) में इक्कीस अप्रैल को जयप्रकाश का वह अपूर्व अभिनन्दन हुआ था। लाखों की भीड़ उनके दर्शन और स्वागत के लिए वहां जमा हुई। लहराते हुए तिरंगे झंडे के नीचे, 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'जयहिन्द', 'जयप्रकाश जिन्दाबाद' के नारों के बीच वह अपूर्व स्वागत-समारोह शुरू हुआ। अध्यक्षता कर रहे थे बिहार केसरी श्रीकृष्ण सिन्हा। स्वागत करते हुए श्री बाबू ने कहा—'जयप्रकाश भारत के हृदय हैं और नौजवानों के बादशाह हैं। यह हमारे स्वप्नों के प्रतीक हैं और जनशक्ति के अप्रतिम नेता।' छात्र कांग्रेस, मोमिन छात्र कांग्रेस तथा अनेक संस्थानों की ओर के अभिनन्दन दिए गए। साइंस कालेज के छात्रों की ओर से कुमारी प्रमिला श्रीवास्तव और बिहार महिला परिषद् की ओर से श्रीमती अन्नपूर्णादेवी ने स्वागत किया।

आगे स्वागत का कार्यक्रम शुरू हुआ रामधारीसिंह दिनकर के काव्यपाठ से। इस अवसर पर उन्होंने जयप्रकाश पर एक विशेष कविता लिखी थी, जो हिन्दी काव्य इतिहास में आज भी अमर है।

आगे सारी राजनीतिक परिस्थितियां बड़ी तेजी से बदलने लगीं। उस

समय देश की राजनीति में, विशेषकर कांग्रेस की सत्तावादी राजनीति में प्रतिक्षण नये मोड़ आ रहे थे। अब ऐसा वक्त आ गया था कि कांग्रेस को समाजवादी लोग उतने उपयोगी नहीं लग रहे थे, जितने कि त्रिपुरी कांग्रेस के वक्त लगे थे। अब उन्हें 'भारत छोड़ो' के समय वाले समाजवादी भी नहीं चाहिए थे; क्योंकि अब सारी स्थिति बदल चुकी थी। अब उन्हें वे समाजवादी अरुचिकर लगने लगे थे, जो अब तक अंग्रेजों को अपना शत्रु मानते थे। क्योंकि अब अंग्रेज कांग्रेस को राज्य देकर भारत छोड़ रहे थे। अब कांग्रेस को वे समाजवादी अपेक्षित नहीं लग रहे थे जिन्हें फारवर्ड ब्लाक के विरोध में उन्होंने तब इस्तेमाल किया था। अब ऐसी कोई जरूरत नहीं रह गई थी कांग्रेस के भीतर समाजवादियों की। उनसे अब तक जितना काम लेना था, वह जैसे अब पूरा हो चुका था।

जे० पी० ने इतिहास के इस निर्णायक मोड़ पर आकर जैसे पहली बार कांग्रेस की उस सत्तावादी राजनीति की करुणा को बड़ी गहराई से अनुभव किया। उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटी से त्यागपत्र दे दिया। जैसे कांग्रेसी नेताओं की तब यही इच्छा थी और यही उनका सारा नाटक था।

नई दिल्ली में उनतीस दिसम्बर, उन्नीस सौ छियालीस को दसवें अखिल भारतीय विद्यार्थी कांग्रेस के चार दिवसीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए जे० पी० ने कहा—'हम सब क्रांति की एक ऐसी दिशा में इतनी तेजी से बढ़ रहे हैं, जहां अगस्त बयालीस से भी बढ़कर एक क्रांति होने को है।'

जयप्रकाश का कांग्रेस से बिलगाव का प्रारम्भ हो चुका था। सारे क्रांतिकारी और राष्ट्रीय मूल्यों से दूर हटती हुई कांग्रेस पूरी तरह से सत्तालोलुप हो रहे थे। देश में पार्थक्य की प्रवृत्ति बलवती थी। ऐसी स्थिति में फिर देशभर के समाजवादी कानपुर में इकट्ठे हुए। छब्बीस, सत्ताइस और अट्ठाइस फरवरी सन् सैंतालीस को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का परम ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ। अध्यक्ष थे डा० लोहिया। पूरे वातावरण में कांग्रेस का वह विचार, 'अब कांग्रेस में अन्य दल के लोग (समाजवादी) सदस्य नहीं रह सकते' बिलकुल गर्म था। इसलिए सम्मेलन में सबसे पहले सिद्धान्तः 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' के नाम से 'कांग्रेस' शब्द काट दिया गया और तब शुद्ध नाम बचा 'सोशलिस्ट पार्टी'।

इसी फरवरी माह में ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने घोषणा की कि अंग्रेज जून, सन् सैंतालीस में भारत छोड़कर चले जाएंगे। इसीके बाद भारत से लार्ड

वैवल इंग्लैंड वापस बुला लिए गए और उनकी जगह लार्ड माउण्टबेटन वाइसराय बनकर आए। अपने साथ माउण्टबेटन एक योजना भी ले आए जिसमें देश-विभाजन के निश्चित तत्त्व मौजूद थे। भारत आते ही माउण्टबेटन ने नेहरू से गहरी दोस्ती की। अन्य कांग्रेसी नेता भी इसी दोस्ती के जादू में आ गए। और मन ही मन कांग्रेसी नेताओं ने माउण्टबेटन योजना स्वीकार कर ली।

उन्नीस सौ छियालीस के अंत में गांधी साम्प्रदायिक दंगों से जूझने के लिए नोआखाली में थे। उस समय जब नेहरू गांधी से मिलने नोआखाली गए तब गांधी ने लोहिया को नेहरू से मिलने भेजा। बातचीत के दौरान नेहरू ने पूर्वी बंगाल में चतुर्दिक फैले पानी, कीचड़, झाड़ियों व पेड़ों की चर्चा करते हुए कहा था—'हिन्दुस्तान के जिस रूप को मैं जानता हूं, उससे यह बिलकुल अलग है।' लोहिया तभी नेहरू की नीयत ताड़ गए थे। उन्हें स्पष्ट लगा था कि नेहरू ने विभाजन के पक्ष में अपना मन बना लिया है और अंतरात्मा की बची-खुची आवाज़ को वह भौगोलिक कारण खोजकर दबाना चाहते थे। यद्यपि नेहरू ने हाल ही में कहा था कि जब अंग्रेज़ों से समझौते की बात होगी तो हमारे और उनके बीच में भगतसिंह की लाश होगी। पर नेहरू स्वभाव से मन के अनुसार अपनी ज़बान बदल लेने में बड़े पटु दे। गांधी भी खुले रूप में विभाजन के विरोधी थे। उन्होंने भी कहा था कि देश का विभाजन होने से पहले उनके शरीर का विभाजन होगा।

जवाहरलाल नेहरू का निमंत्रण पाकर गांधीजी पच्चीस मई को दिल्ली आए और उनकी उपस्थिति में सैंतालीस की चौदह और पन्द्रह जून को कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई। गांधी एक-एक की नब्ज़ टटोल रहे थे। जयप्रकाश और लोहिया से उन्होंने अलग-अलग बातें कीं। बापू अब भी माउण्टबेटन-योजना और कांग्रेस नेताओं की देश-विभाजन की स्वीकृति के विरुद्ध समाजवादी शक्ति को साथ लेकर एक आखिरी लड़ाई लड़ना चाह रहे थे।

जे० पी० को वह क्षण याद है जब बापू ने कहा—'जयप्रकाश, तुम अगस्त क्रांति के वीर सिपाही हो। तुम्हारी वीरता का योग कांग्रेस को मिले, यह मैं चाहता हूं।'

जे० पी० ने सम्पूर्ण भक्ति से कहा—'बापू, आप आज्ञा दीजिए।'

बापू ने कहा—'तुम कांग्रेस के अध्यक्ष बनो।'

बिहार विधान सभा का घेराव कराने जाते हुए जयप्रकाश

८ अक्तूबर, '७४ को सचिवालय के मुख्य द्वार के बाहर उपवास कर रहे जयप्रकाश

अमेरिका में युवा छात्र जयप्रकाश
का भविष्य की कल्पना करता हुआ
आशावान चेहरा

पटना में पुलिस की लाठी के
की चोट सहता हुआ वृद्ध ने
जे० पी० का

अभिव्यक्ति इस वृद्धावस्था में भी

लोकनायक की प्रेरणा धर्मपत्नी प्रभादेवी

लोकनायक की उत्प्रेरणा का परिणाम : लोकक्रान्ति की लहर

पटना सिटी गोलीकांड में शहीद हुए एक निहत्थे लोक-सेवक की लाश के पास
लोकनायक जे० पी०

सचिवालय के दक्षिणी द्वार पर सत्य का आग्रह करती जनता

"रुक जाओ ! सचिवालय में आज कोई काम नहीं होगा !"—सचिवालय के मुख्य द्वार को रोके खड़े सत्याग्रही

जे० पी० ने संकोचपूर्ण ढंग से उत्तर दिया—'मैं तैयार हूं। आप जवाहरलाल और पटेल से पूछिए।'

अगले दिन बापू ने अपनी वह इच्छा जवाहरलाल से व्यक्त की। जवाहरलाल ने कहा—'पर अभी जयप्रकाश से सीनियर लोग मौजूद हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव···'

बापू एकदम चुप हो गए। और आगे समय आने पर कांग्रेस अध्यक्ष बनाए गए राजेन्द्रप्रसाद।

कांग्रेस कार्यसमिति की वह बैठक बड़ी करुण थी। सारा वातावरण बेहद निर्जीव और उदास था। नेहरू और पटेल केवल यही दो लोग बोल रहे थे। शेष सब जैसे शब्दहीन थे। मौलाना आज़ाद दोनों दिनों की बैठक में एक कोने में चुपचाप बैठे सिगरेट फूंकते रहे। कांग्रेस अध्यक्ष कृपलानी माथा झुकाए बैठे ऊंघ रहे थे। जयप्रकाश और लोहिया बीच-बीच में नेहरू और पटेल से जूझ पड़ते थे। गांधी अजब सूनी-सूनी आंखों से बैठक का वह सारा दंगा देख रहे थे। वह बार-बार जयप्रकाश, लोहिया और नेहरू की ओर देखते। उनका मन तड़प रहा था कि किसी तरह विभाजन न हो। उनके हृदय में जो गहरा दर्द था उसमें से अचानक शब्द फूटे—'आप लोगों ने, आपमें और माउण्टबेटन के बीच समझौते की जो बातें चलीं, उस संबंध में मुझे कुछ नहीं कहा, लेकिन···'

गांधी आगे कुछ नहीं बोले, सिर्फ एक उदास नज़र से नेहरू को देखा। नेहरू वह नज़र नहीं सह सके। दूसरी ओर मुंह घुमाकर बोले—'नोआखाली बहुत दूर है। हो सकता है कि योजना की पूरी तफसील आपको न बताई गई हो, लेकिन विभाजन-योजना के बारे में मैंने आपको पत्र तो लिख दिया था।'

तत्काल जे० पी० बोले थे—'बापू को पूरी बात नहीं बताई गई और इन्हें जानबूझकर अंधेरे में रखा गया था। लोगों ने यह कोशिश की है कि जब तक योजना लागू करने का इरादा पक्का न कर लिया जाए तब तक बापू को बातचीत से अलग रखा जाए।'

इस बार फिर विभाजन के प्रस्ताव पर समाजवादी पार्टी तटस्थ रही। संघर्ष के आखिरी मोर्चों पर समाजवादियों और विशेषकर जे० पी० का इस तरह खामोश हो जाना, ऐसा संस्कारगत दोष है, जिसका दण्ड उन्हें आगे भोगना पड़ा।

दिल्ली में तब एक राष्ट्रीय सरकार बनी। जवाहरलाल प्रधानमंत्री थे। साथ ही दिल्ली में अंग्रेज वाइसराय लार्ड माउण्टबेटन भी थे। और ब्रिटिश सेना के साथ अंग्रेज कमाण्डर-इन-चीफ भी मौजूद था। इस पूरे कारुणिक विरोधाभास पर जे० पी० की चेतना अत्यन्त क्षुब्ध थी। इसकी पहचान हमें जे० पी० की उन सारी बातों से मिलती है--छियालीस के बम्बई ए० आई० सी० सी० भाषण से लेकर नौ अगस्त के 'आज़ादी के सैनिकों के नाम' अपने उस तीसरे खत तक।

उन्हें जितना असंतोष अंग्रेजों द्वारा निर्मित और प्रदत्त उस समय भारत की संविधान सभा के प्रति था, उससे कहीं ज़्यादा दुख उन्हें कांग्रेस संगठन और उसके सत्तालोलुप नेताओं पर था। 'आज़ादी के सैनिकों के नाम' अपने उस तीसरे और अंतिम पत्र में जे० पी० ने पहले के दोनों पत्रों के ही अनुरूप, पर उनसे कहीं ज़्यादा गंभीर शब्दों में अंग्रेजों से उस तरह सत्ता हस्तांतरण वाली आज़ादी के प्रति चेतावनी दी और शुद्ध सत्तावादी राजनीति की काली छाया के बीच, जे० पी० ने फिर भी न जाने किस विश्वास से वास्तविक आज़ादी की तस्वीर खींचनी चाही और उसके लिए कार्यक्रम दिए।

देश में द्वेष और हिंसा की आग भड़क रही थी। पूर्व बंगाल में नोआखाली में हत्याकांड चल रहा था। गांधी वहां पहुंचे और एकाकी चलकर उन्होंने उस आग को कुछ बुझाया, तो इधर बिहार में आग लग गई। बादशाह खान के साथ बिहार का दौरा कर शांति का संदेश देने वाला फकीर जानता था कि सारा भारत ही जल रहा है, काल का समुद्र-मंथन चल रहा है, जिसमें से हलाहल विष निकल रहा है। इस समय आवश्यकता है हलाहल का पान करने वाली शिव-शक्ति की। राजधानी में भी हिंसा का तांडव चल रहा था। उसको शांत करने वे दिल्ली पहुंचे, जहां से वह लाहौर जाने वाले थे। देश के टुकड़े होने पर भी वे दिलों को जोड़ने का काम कर रहे थे। वे जानते थे कि दिल जुड़ जाएं तो कभी दोनों देश भी जुड़ जाएंगे। सन् उन्नीस सौ अड़तालीस की जनवरी में बापू दिल्ली पहुंचे, तब प्रभावती और जयप्रकाश उनके साथ थे।

अपने प्राणों का बलिदान चढ़ाकर मानवता और भारतीयता की रक्षा करने के अंतिम प्रयास में उनका अंतिम उपवास हुआ। शांति-स्थापना के आश्वासनों पर उनका उपवास छूटा। दूसरे ही दिन—बीस जनवरी को—उनकी

प्रार्थना सभा में बम विस्फोट हुआ। कालात्मा मानो महात्मा का बलिदान मांग रहा था।

तीस जनवरी, महात्मा के महानिर्वाण का दिन। अस्ताचल की ओर जाने वाले सूर्यनारायण की साक्षी में, सामने खड़े हुए हत्यारे को नारायण समझकर प्रणाम के लिए बापू के दो हाथ जुड़ गए। बापू कई वर्षों से कहा करते थे कि 'मुझे अभी महात्मा मत कहो, मेरी असली परीक्षा होगी अंतिम घड़ी में। उस समय राम का नाम मुंह से निकले···' विनोबाजी के साथ चर्चा करते हुए वे एक बार बोले थे ; 'इस देह में रहते हुए पूर्ण आत्मज्ञान नहीं हो सकता है। जिस क्षण पूर्ण आत्मज्ञान हो जाएगा, उसी क्षण देह खड़े-खड़े ही ढह जाएगी, जैसे मिट्टी का ढेर ढह जाता है।'

तीन गोलियां चलीं और उनकी देह ठीक उसी तरह ढह गई। मुख से निकला—'हे राम'।

उस दिन पृथ्वी पर बसने वाला हर मानव रोया था, हर आंख गीली हुई थी, हर दिल टूट गया था। पटना के हवाई अड्डे पर बापू के अंतिम दर्शन के लिए दिल्ली ले जाने वाले हवाई जहाज़ की प्रतीक्षा करती हुई प्रभावती दिन-भर से रो रही थी। किसी भी हवाई जहाज में जगह नहीं मिली। पटना से एक विशेष हवाई जहाज़ दिल्ली के लिए निकला, जिसमें एक बुज़ुर्ग मंत्री थे, जो जानते थे कि बापू की बेटी यहां प्रतीक्षा में बैठी है; लेकिन वे भी उन्हें साथ नहीं ले गए। आखिर ट्रेन से चलकर जब वे तीसरे दिन दिल्ली पहुंचीं तो केवल भस्म ही शेष थी। उन्हें बापू के अंतिम दर्शन न हो सके।

बम्बई से विशेष हवाई जहाज़ से दिल्ली पहुंचे हुए जयप्रकाश जब उन्हें दिल्ली स्टेशन पर मिले, तब वे पूरी तरह टूट चुकी थीं, फूट-फूटकर रो रही थीं। जयप्रकाश चुप थे। उनकी आंखों में जैसे बापू की चिता अब भी दहक रही थी। और उस चिता की आग से जो ज्वाला फूट रही थी, उसमें से न जाने कैसा प्रकाश निकल रहा था।

कांग्रेसी सरकार बन चुकी थी। गांधीजी बिहार से दिल्ली आए थे। दिल्ली स्टेशन पर तब उनके स्वागत में कोई एक भी कांग्रेसी नेता नहीं आया था।

दिल्ली में तब पटेल ने गांधी को देखकर कहा था—यह बुड्ढा फिर कहां से आ गया ?

उस वक्त अंधेरा घिरने लगा था।

गांधीजी जिस दिन भारतीय राजनीति से चले गए, उसी दिन कांग्रेस और समाजवाद का सेतु ढह गया। वह कड़ी टूट गई, जहां नैतिकता और राजनीति का योग होता था।

गांधी का रामराज्य और जयप्रकाश का समाजवादी राज्य, दोनों में सामंजस्य स्थापित हो जाता अगर थोड़े दिन गांधी और जीवित रहते।

पर ज्वाला अचानक बुझ गई।

बापू अकसर मज़ाक में कहा करते थे, 'मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीऊंगा।'

जे० पी० हिसाब लगाते हैं। उन्नीस सौ बीस से बाइस का असहयोग आंदोलन, तीस से बत्तीस का सविनय अवज्ञा आंदोलन और चालीस से बयालीस की अगस्त क्रांति, दस-दस वर्ष का अंतर रखकर गांधीजी भारतीयों और अंग्रेज़ों को सोचने और हृदय-परिवर्तन का अवसर देते थे। इन वर्षों में तब गांधी क्या देखने के लिए जीवित रहते ? स्वराज्य में वही सत्य देखने के लिए जिंदा रहते ? राजनीति और धर्म, सदाचार और नीति का जिस तरह अलगाव हो गया था और जिनका मिलाना अधिकांश कांग्रेस नेताओं को सह्य नहीं था, उसे गांधी मिलाकर एक कर देते। सत्य, दया, प्रेम आदि सद्गुण केवल व्यक्तिगत या ज्यादा से ज्यादा पारिवारिक क्षेत्र में आचरण के उपयुक्त समझे जाते थे, गांधी इसे सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन और उसकी पूरी सामाजिकता में उन मूल्यों के आचरण होते देखना चाहते।

जे० पी० उस अंधेरे में उदास चुपचाप उसी आचरण के मर्म को अकेले ढूंढने लगे थे।

जे० पी० ने जब बापू से पाकिस्तान बनने के विरोध में सत्याग्रह की बात की, तब बापू ने कहा—जयप्रकाश ! मेरे पास दो मोहरे थे—नेहरू और पटेल, दोनों हाथ से चले गए। अब विरोध मत करो। जो हो गया, हो गया। दोनों को मिलाएंगे।

जे० पी० ने बाद में कहा है, 'एक गलती गांधी ने की पाकिस्तान-निर्माण का विरोध न करके, दूसरी गलती मैंने की गांधी की बात मानकर।'

नोआखाली की प्रतिक्रिया से बिहार में साम्प्रयिक दंगे हुए थे। तब जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री हुए थे। जे० पी० मुंगेर के तारापुर क्षेत्र में कार्य कर रहे थे। नेहरू ने तब बिहार का हवाई ज़हाज़ से दौरा किया था और बिहारियों पर नाराज़ होकर कहा था—'बम गिराऊंगा, इन्हें शांत

करूंगा।' पटना की सभा में छात्रों ने नेहरू को पकड़ लिया था। उनके कपड़े फाड़ डाले थे। तब जे० पी० ने बचाया नेहरू को। छात्रों से कहा, 'माफी मांगो।'

छात्रों ने माफी मांगी। इतना प्रभाव था जे० पी० का। पर अंधेरा होता जा रहा था।

राजनीति में एक सिद्धान्त होता है। एक उद्देश्य होता है। पार्टी का लक्ष्य उसके सिद्धान्तों से ही निकलता है। जे० पी० उसी अंधेरे में चलते-चलते सोचने लगे—गोडसे ने बापू को किसी सिद्धान्त के ही कारण मारा। उसका कोई निजी बैर तो गांधी से था नहीं। उसके सिद्धान्त के अनुसार गांधी की हत्या करना गोडसे का परम लक्ष्य था।

पर साधन कैसा भयानक था !

जे० पी० मार्क्सवादी समाजवाद के मानसपुत्र थे। इसी बिन्दु से उनमें सैद्धान्तिक-वैचारिक मंथन शुरू हुआ। साधनशुद्धि की बात यहीं सामने खड़ी हो गई।

गांधी त्रिमूर्ति थे—महात्मा, राजनेता और क्रांतिकारी। और इन तीनों को आध्यात्मिक गांधी एकाकार करता था, महात्मा का कोई उत्तराधिकारी संभव नहीं था। राजनेता उत्तराधिकारी जवाहरलाल नेहरू हुए। आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा भावे हुए। क्रांतिकारी उत्तराधिकार उस अंधेरे में जे० पी० के सामने था। यहीं से आस्था-यात्रा शुरू हुई जयप्रकाश की।

विद्रोह और क्रांति में अंतर क्या है ? अगस्त आंदोलन विद्रोह था। विद्रोह का काम है—जो असत्य है, शोषक है, अर्थहीन है, उसे नष्ट कर डालना, तोड़ फेंकना। पर क्रांति वह है जो आमूल, सम्पूर्ण परिवर्तन ला देती है। जो एक नई सृष्टि करती है मानवता की, उसके मूल्यों की।

कांग्रेस से अलग होने के पहले जयप्रकाश ने गांधी से पूछा था—'बापू, मैं कांग्रेस से अलग होना चाहता हूं।'

बापू चुप रह गए। पहले विरोध करते थे। उस क्षण विरोध नहीं किया। सिर्फ इतना कहा, 'बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा।' जयप्रकाश ने उसे स्वीकार कर लिया और चल पड़े उसी अंधेरे में।

स्वतंत्र भारत अपनी नई यात्रा की तैयारी कर रहा था। जयप्रकाश इस स्वतंत्र राष्ट्र की रूप-रचना पूर्ण जनाधिकार और जनतांत्रिक आधार

पर करना चाहते थे। देश में संविधान सभा स्वतंत्र भारत का संविधान निर्मित करने की दिशा में लगी थी। जयप्रकाश ने संविधान सभा को वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित करने का बुनियादी प्रश्न उठाया और विरोध में संविधान सभा की सदस्यता अस्वीकार कर दी और आज़ादी को अपूर्ण घोषित किया।

गांधी के निधन के बाद मार्च, उन्नीस सौ अड़तालीस के शुरू में ही कांग्रेस ने बाकायदा निश्चय किया कि किसी दूसरी पार्टी का सदस्य कांग्रेस का सदस्य नहीं हो सकता। मूल उद्देश्य कांग्रेस के भीतर से समाजवादियों को बाहर निकालना था। राजेन्द्रप्रसाद के अलावा सब इस निर्णय के पक्ष में थे। उनका विचार था कि गांधी की निर्मम हत्या के बाद, देश की अनेक विकट परिस्थितियों को संभालने के लिए कोई ऐसा निर्णय न लिया जाए, जिसके कारण उन लोगों को जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए इतनी कुर्बानियां की हैं, कांग्रेस को छोड़ देना पड़े। उन्हें याद था—गांधीजी हमेशा चाहते थे कि समाजवादी कांग्रेस में बने रहें। पर वल्लभभाई पटेल समाजवादियों को कांग्रेस से निकालने पर तुल गए थे। कारण इसके अनेक थे।

कांग्रेस के इस नये नियम बनने के बाद उसी मार्च महीने में पुरुषोत्तम त्रिकमदास की अध्यक्षता में नासिक में समाजवादी पार्टी का अधिवेशन हुआ। इसीमें निश्चय हुआ कि सोशलिस्ट पार्टी के सब सदस्य कांग्रेस से अपना संबंध विच्छेद कर लें।

जयप्रकाश ने इसी अधिवेशन में अपने प्रस्ताव के आधार पर 'साध्य और साधन' का महत्त्वपूर्ण प्रश्न बठाया :

'पश्चिम में प्रतिपक्षी दल अपने प्रतियोगी दल को कलंकित करने के लिए असत्य एवं मिथ्यात्व का सहारा लेना गलत नहीं समझते हैं, वे यह नहीं मानते कि चुनाव में अनुकूल परिणाम प्राप्त करने के लिए रिश्वत और भ्रष्टाचार का भी सहारा लेना गलत है। कुछ ऐसे दल हैं जो असत्य एवं भ्रष्टाचार से भी बहुत आगे चले जाते हैं। उनके लिए हत्या, लूट और आगज़नी भी राजनीतिक व्यूहरचना के अंग हैं। पिछले महीनों में हमने देखा है कि किस प्रकार इस व्यूहरचना के फलस्वरूप अत्यन्त वेदनापूर्ण घटनाएं हुई हैं।...'

अपने इस विचार के संदर्भ में जे० पी० ने गांधी के साधन और साध्य दृष्टि से अपनी पूर्ण सहमति प्रकट की। साथ ही अपने एक अन्य वक्तव्य में उन्होंने जब 'आध्यात्मिक' पुनर्जीवन की बात कही तो पार्टी के तमाम दोस्तों

ने सोचा कि हाल की घटनाओं से विचलित होकर जे० पी० जीवन की कठोर वास्तविकताओं से भागने की कोशिश कर रहे हैं। इसपर जे० पी० ने जवाब दिया :

'आपमें से जिन लोगों ने यह सोचा होगा, वे पूरे भ्रम में हैं। अगर आध्यात्मिक शब्द का कोई धार्मिक या तात्त्विक अर्थ लिया जाए तो मुझे ऐसी बातों का कोई ज्ञान नहीं है। मैं अचानक आत्मा या ब्रह्म जैसी किसी वस्तु में विश्वास नहीं करने लगा हूं। मेरा जो दर्शन है, वह पार्थिव है, मानवीय है। समाज में जैसे लोगों के साथ मैं जीना चाहता हूं, उनका रूप क्या हो, यही समस्या मेरी चिन्ता का विषय है। स्पष्टत: मैं ऐसे समाज में जीना नहीं चाहता जो मिथ्याभाषियों और हत्यारों का समाज है, ऐसे लोगों का समाज है जिनमें सज्जनता, सहिष्णुता और बन्धुत्व-भावना न हो।...'

अपने इसी प्रतिवेदन में जयप्रकाश राजनीति में सदाचार नीति का प्रश्न उठाते हैं। आगे वह दृढ़तापूर्वक इस धारणा को अस्वीकार करते हैं कि सारी राजनीति सत्ता की राजनीति है और उसमें निहित इस मान्यता का भी खंडन करते हैं कि राज्य ही सामाजिक कल्याण का एकमात्र साधन है।

सन् छियालीस में चूंकि कांग्रेस के सदस्य की हैसियत से ही समाजवादियों ने विधान सभाओं के चुनाव में हिस्सा लिया था, इसलिए अब अड़तालीस में समाजवादी विधायकों ने कांग्रेस छोड़ने के साथ विधान सभा से भी इस्तीफा देना उचित समझा।

समाजवादियों द्वारा विधान सभा की सदस्यता छोड़ने के बाद दो-तीन महीने के अन्दर ही उपचुनाव कराए गए और इन सबमें कांग्रेस ने समाजवादियों के विरुद्ध उम्मीदवार खड़े किए। इन उपचुनावों में कांग्रेस ने राजनीति प्रश्नों पर पर्दा डालकर अप्रासंगिक प्रश्नों को उपस्थित कर जनता को भ्रम में डालने की पूरी कोशिश की। गलत प्रचारों, जाति, धर्मविश्वास, अंधविश्वास के तत्त्वों को चुनाव-कार्य में इस्तेमाल किया गया। उदाहरण के लिए आचार्य नरेन्द्रदेव के खिलाफ कांग्रेस की ओर से राघवदास खड़े किए गए थे और जनता में यह प्रचार किया जा रहा था, 'आचार्यजी नास्तिक हैं। धर्म और संस्कृति को भ्रष्ट करना चाहते हैं, जबकि बाबा राघवदास संस्कृति के ज्ञाता और पोषक हैं तथा धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए ही महात्मा गांधी की दैवी प्रेरणा से आचार्यजी के विरुद्ध चुनाव लड़ रहे हैं।'

जे० पी० उन दिनों दिन-रात दौरा कर रहे थे। चुनाव के कार्य के साथ ही साथ जिलास्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक नई समाजवादी पार्टी का संगठन कर रहे थे। सब कुछ नये सिरे से, कार्यालय-व्यवस्था से लेकर उसके कार्यकर्ताओं तक। जे० पी० चुनाव की भ्रष्ट प्रकृति से सीधे अनुभव बटोर रहे थे। और चुनाव में चालीस-बयालीस प्रतिशत तक वोट प्राप्त करने पर भी सारे क्षेत्रों में समाजवादी पराजित हुए, तब जे० पी० ने कहा, 'हमें इस पराजय को अपनी पार्टी की नई चेतना-सृष्टि के लिए इस्तेमाल करना चाहिए। पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालीस के बाद हमारे दल के कर्तव्य रचनात्मक हो गए हैं। हमें एक नये भारत का निर्माण करना है...।'

पर इन सारी बातों और विश्वासों के बावजूद सच्चाई यह थी कि अब तक समाजवादियों को जो राष्ट्रीय सम्मान और स्थान प्राप्त था, उसका एक बड़ा कारण यह था कि ये कांग्रेस के अभिन्न अंग थे। कांग्रेस से अलग होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता इन्हें अर्जित करनी थी। कांग्रेस से अलग इनके प्रभाव के प्रमुख क्षेत्र थे— बिहार, उत्तरप्रदेश की कुछ किसान सभाएं, बम्बई और उत्तर भारत के कुछ विश्वविद्यालय और कुछ औद्योगिक केन्द्र। पर कांग्रेस के राष्ट्रीय प्रभाव की तुलना में इतना सब कुछ भी नहीं था। भारतीय समाजवादियों के जीवन की यह कैसी अजीब घटना थी कि अपने जीवन से लेकर पूरे चौदह वर्षों तक इन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम की लड़ाई में अपने पूरे त्याग और बलिदान से जिस कांग्रेस को महिमा-मंडित किया, राष्ट्रीय चेतना का अप्रतिम संस्थान बनाया, आज़ादी के बाद उसीसे अलग होकर उसीके विरोध में खड़ा होना पड़ा। भारतीय मनुष्य बहुत देर में किसी चीज़ पर पूर्ण विश्वास कर पाता है, और फिर दूना समय लगता है, उससे अपना विश्वास तोड़ने के लिए। इस बीच उसे अपने विश्वासों के लिए चाहे जितनी कीमत क्यों न अदा करनी पड़े। तब से यही संक्षिप्त इतिहास रहा है कांग्रेस और समाजवाद के सीधे संघर्षों का, प्रत्यक्ष विरोधों का।

जो श्रेष्ठ था, वह सब तो कांग्रेस को, गांधी को दे दिया गया, पर आज़ादी के बाद जब कांग्रेस सरकार बन गई, गांधी की हत्या हो गई तो सारे समाजवादी, विशेषकर जयप्रकाश और लोहिया दोनों जैसे नितान्त अकेले हो गए। इतनी बड़ी पार्टी के बावजूद एकाकी। तब से ऐसा अनेक अवसरों पर लगता कि जयप्रकाश और लोहिया भी एक-दूसरे के परम विरोधी हैं। अकसर

लगता कि जयप्रकाश और लोहिया एक-दूसरे के पूरक हैं और कभी-कभी अचानक ऐसा भी लगता कि जयप्रकाश लोहिया की भाषा बोल रहे हैं, लोहिया के ही काम कर रहे हैं और लोहिया जयप्रकाश की भाषा में बोल रहे हैं, जे० पी० के ही काम कर रहे हैं।

कांग्रेस की वह राजनीति एक-दूसरे को इस्तेमाल करने की राजनीति थी। गांधी इसके नेता थे। नेहरू इसके नियामक और भोक्ता दोनों थे। और इसमें सबसे ज्यादा इस्तेमाल हुए जयप्रकाश—मतलब सी० एस० पी० दौर का सारा समाजवादी आंदोलन।

अब समाजवादियों की उस यात्रा में सबसे बड़े विरोधी थे वही कांग्रेसजन। वही कांग्रेस संस्था। इसका मर्म अब समझ में आता है।

जब कभी कोई क्रांति किसी विशिष्ट नेता और विशिष्ट संस्था-शक्ति द्वारा चलाई जाती है, तो आगे चलकर वही क्रांति नेता और संस्था के लिए निहित स्वार्थ बन जाती है। फिर वे इस बात को बर्दाश्त नहीं कर पाते कि उस जमात के बाहर कोई स्वतंत्र शक्ति खड़ी हो।

नेहरू की कांग्रेस संस्था के सामने जयप्रकाश के समाजवादी दल की बिलकुल यही हालत थी। कांग्रेस नहीं चाहती थी कि उसके अलावा कोई दूसरी शक्ति अन्याय, शोषण और विषमता के खिलाफ लड़ाई लड़े।

जब एक बार कुछ नाराज़ होकर डा० राममनोहर ने जयप्रकाश को पत्र में 'आप' लिख दिया तो जे० पी० को इससे ज़्यादा अपमान-जनक और कुछ नहीं लगा। वह आगबबूला होकर बोले—'राममनोहर, तूने मुझे 'आप' क्यों लिखा?'

—अच्छा, गलती हो गई।

—खबरदार, फिर अगर कभी ऐसी गलती की।

जो अभिन्न साथी थे दोनों के, वही जानते हैं कि जे० पी० और लोहिया प्रेम और युद्ध में, प्रेम और मनुहार में, मिलन और टूटन में भी कॉफी के प्यालों पर किस भाषा में बोलते थे!

गांधी की हत्या के बाद जो गहन अंधकार आज़ाद भारत के नैतिक जीवन पर उतरा था, वह उस दिन नासिक सम्मेलन के बाद थोड़ा टूटा था, जिस दिन जयप्रकाश ने प्रत्यक्ष अनुभव किया :

'पिछले वर्षों में दलबदल का जो संक्रामक रोग देश के राजनीतिक जीवन में पैदा हुआ है उसको ध्यान में रखते हुए यहां यह भी उल्लेखनीय है

कि जब नासिक में यह निर्णय हुआ कि समाजवादी कांग्रेस से पृथक् हो जाएं तो साथ-साथ यह भी तय पाया कि उनमें से जो कांग्रेस टिकट पर चुनाव में सफल होकर विधान सभाओं के सदस्य बने हैं उनको इस्तीफा देना चाहिए और फिर से उपचुनाव लड़ना चाहिए। उस निर्णय का सभी संबंधित व्यक्तियों ने पालन किया। यह एक ऐसा आदर्श था जिसको स्मरण करके आज भी गौरव का अनुभव होता है।'

इसी आदर्श और गौरवमय क्षणों में कांग्रेस से स्वतंत्र, समाजवाद को जो नया जन्म मिला, उसमें कई बातें उल्लेखनीय हैं।

इस समाजवाद के दो पुरुष थे—जयप्रकाश और लोहिया। दोनों मानस-पुत्र थे भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के उषाकाल में गांधी के असहयोग आंदोलन के। दोनों की शिक्षा बाहर हुई। पर दोनों संस्कारतः दीक्षित थे भारतीय राष्ट्रीयता से, जिसका मर्म है स्वतंत्रता, समानता। उसी संस्कार ने दोनों में बार-बार प्रश्न खड़े किए साध्य और साधन, संगठन और असंगठन, स्वीकार और अस्वीकार तथा आत्मदृष्टि और समदृष्टि के।

समाजवादी सब कुछ छोड़कर आए थे, सिर्फ उनके साथ थीं उनकी व्यक्तिगत अनुभूतियां तथा वे करुण क्षण जो गत पन्द्रह वर्षों के जीवंत इतिहास ने उनकी मुट्ठियों में बांध दिए थे। इनके पास तब न अपना कोई बना-बनाया राजनीतिक ढांचा था, न संगठन का कोई ऐसा निश्चित स्वरूप जिसके नीचे ये एकमत हो खड़े हो जाते। जो कुछ भी अपने से बाहर का था, वह अब तक निस्संग हो चुका था।

ये निपट भारतीय थे। निम्न-मध्यवर्ग के संस्कारों से निकले हुए लोग। भारत को जो कुछ भी श्रेय था वह इन्हें इनकी उस नई तलाश में मिला और साथ ही भारत का, विशेषकर हिंदी-क्षेत्र का जितना कुछ सड़ा-गला था, स्वभावतः वह भी इन्हें मिला।

इन्हीं दिनों जे० पी० ने मार्क्सवाद का पुनः परीक्षण किया। रूसी समाजवाद को परखा। पाश्चात्य समाजवाद को समझा। एशियाई समाजवाद की सीमाएं देखीं। और अंत में एक बहुत बड़े प्रश्न के आमने-सामने आ खड़े हुए।

*मार्क्सवाद के साधन और साध्य का प्रश्न

*भौतिकवाद और अच्छाई की प्रेरणा का प्रश्न

स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का वही आकाशदीप जिसने जे० पी० के

जीवन का रास्ता प्रशस्त किया और जो उन्हें लोकतांत्रिक समाजवाद की ओर ले आई, उसीने आगे गांधी-मार्ग पर मोड़ दिया।

'तात्त्विक दृष्टि से भौतिकवाद में न तो नैतिक व्यवहार के लिए कोई क्षाधार है न अच्छा बनने के लिए कोई प्रेरणा या अभिक्रम ही।'

'मनुष्य, उसकी चेतनशक्ति, समाज और संस्कृति—जिनका उसने निर्माण किया है—यदि ये सब भूतद्रव्य की, फिर वह द्वन्द्वात्मक दृष्टि से चाहे कितना सक्रिय क्यों न हो, अभिव्यक्ति मात्र हैं, तो मैं नहीं समझता कि क्यों किसी व्यक्ति को अच्छा बनने अर्थात् उदार, दयावान और निःस्वार्थी बनने की कोशिश करनी चाहिए! तब किसी दुर्बल, दीन-दुखी के प्रति किसीको सहानुभूति क्यों होनी चाहिए? मृत्यु के उपरांत जो द्रव्यभूत है, वह भूतद्रव्य में विलीन हो जाएगा। अतएव नैतिक व्यवहार के लिए उससे क्या प्रेरणा मिल सकती है?'

जयप्रकाश ने इन प्रश्नों से साक्षात्कार करके पाया कि 'मनुष्य जब सृष्टि के समष्टि रूप को समझने या उसके साथ आत्मसाक्षात्कार करने का प्रयास करता है, तो नैतिक मूल्य पैदा होते हैं। इस समष्टि का जिसे अनुभव हो गया है, उसके लिए नैतिक मूल्यों के अनुसार आचरण करना उतना ही सहज और स्वाभाविक हो जाता है, जितना सांस लेना।'

यही है जयप्रकाश का सर्वोदयी व्यक्तित्व। यहीं से उनकी राजनीति लोकनीति में बदल जाती है और दलीय राजनीति अदलीय राजनीति हो जाती है।

आज़ादी के बाद गांधीजी की लोक सेवक संघ की कल्पना और दर्शन को पहली बार जे० पी० ने व्यावहारिक रूप देना शुरू किया। यही आधार है उनके 'जीवनदान' का। और उस दान से उपजे हुए अनेक प्रकार के दानों का, संकल्पों और उनके व्यवहारों का। यही है वह नई आस्था, नया मानव-विश्वास, नई नैतिकता और वह नया रसायन जो उस लम्बी जययात्रा में जयप्रकाश के हाथों लगा।

निश्चय ही यह आस्था और कर्म एक ऐसी नई प्रक्रिया है, जिसका दुनिया को अभी कोई अनुभव नहीं है।

पश्चिम की सांस्कृतिक परम्पराओं और उपलब्धियों की देन है 'व्यक्ति'। और इसके विपरीत भारत की संस्कृति और इसकी मनीषा की उपलब्धि है—'मनुष्य'। व्यक्ति 'एटानमस' है, स्वायत्त है। कुछ भी कर डालने के लिए

आजाद। कुछ भी सोचने और कर गुजरने के लिए स्वतंत्र। मनुष्य इस तरह स्वायत्त नहीं है—'एटानमस' नहीं है। मनुष्य यहां अपने कर्मों को पूरा करके, उसीके द्वारा स्वतंत्र होता है। स्वतंत्र होकर फिर मुक्ति के लिए साधना करता है। यहीं से एक भयानक विरोधाभास और संकट भारतीय समाज में पैदा होता है। एक ऐसा अंधकार, जहां मनुष्य समाज से अलग छूट जाता है। जहां उसकी निजी मुक्ति ही उसके जीवन का लक्ष्य बन जाती है और समाज उसके लिए अप्रासंगिक हो जाता है। यह समाज से आंख मूंदकर, उससे आगे निकलकर, बल्कि भागकर उस ब्रह्म से, उस अध्यात्म से अपने को जोड़ने लगता है, जो निश्चय ही अदृश्य है, अव्यक्त है और समाज से बाहर है।

जयप्रकाश ने अपने समाजशास्त्रीय अध्ययन, समाजवादी सत्य की तलाश और अपनी अर्जित अनुभूतियों से पाया कि मनुष्य एक भाव है, सूक्ष्म तत्त्व है। व्यक्ति ही इसका प्रकट रूप है। मनुष्य व्यक्ति के ही रूप में तो सामने आता है।

और समाज से बाहर इस व्यक्ति की कोई कल्पना नहीं है। कोई अर्थ और प्रासंगिकता नहीं है।

जे० पी० ने पश्चिम के व्यक्ति को भारत के मनुष्य के साथ जोड़कर जिस आदमी की कल्पना की है, खोज की है, वह जे० पी० की उतनी ही बड़ी देन है जितनी बड़ी देन गांधी की 'सत्य मेरा ईश्वर' है।

दूसरे आम चुनाव के पूर्व जयप्रकाश ने निर्णय लिया कि वह पक्षगत निष्क्रिय सदस्यता का भी त्याग कर देंगे। किन्तु उन दिनों आचार्य नरेन्द्रदेव अस्वस्थ थे। जयप्रकाश उनसे विचार-विमर्श नहीं कर सके। उन्नीस फरवरी, सन् छप्पन को नरेन्द्रदेवजी का इरोड में स्वर्गवास हुआ। उनकी मृत्यु से जे० पी० को अपार दुख हुआ।

सन् सत्तावन के दूसरे आम चुनाव के पहले सन् पचपन में ही समाजवादी आंदोलन में फूट पड़ गई। तभी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के दो टुकड़े हो गए। डा० लोहिया के नेतृत्व में फिर सोशलिस्ट पार्टी के नाम से एक स्वतंत्र समाजवादी पार्टी बनी।

इस बीच, विशेषकर चुनाव से पहले जहां सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी चुनाव में एक-दूसरे के विरोध में लड़ने जा रही थीं, जे० पी० की स्थिति उस करुण बुजुर्ग की तरह थी जिसके संयुक्त परिवार में भाई-भाई

लड़ रहे हों और घर का वह बुजुर्ग विवश होकर चुपचाप आंसू पी रहा हो।

अब पार्टी और राजनीति से अलग हो जाने की पूरी स्थिति आ गई थी। पर प्रसोपा के साथियों ने चुनाव तक त्यागपत्र न देने का आग्रह किया। जे० पी० मान गए। पर यह सिर्फ कहने की बात थी। जे० पी० ने वस्तुतः पार्टी और राजनीति उसी दिन छोड़ दी, जिस दिन उन्होंने सर्वोदय को जीवनदान दिया तथा जिस क्षण उनके भीतर राजनीति के स्थान पर लोकनीति का प्रकाश फूटा। पर जिन कारणों से जे० पी० ने ऐसा किया वे भी कम न थे। उन्हें जे० पी० ने गहरे दुख के साथ बताया है, 'जिन कारणों ने मुझे पार्टी और राजनीति छोड़कर सर्वोदय आंदोलन में जाने को प्रेरित किया उनमें से वह आत्मिक दुख भी था जो पार्टी में चरित्र-वध और उसके विघटन के समय मुझे हुआ। राजनीति में मतभेद तो पैदा होते ही हैं और जब वह एक मर्यादा के बाहर चले जाते हैं तो फिर जिनके मत मिलते नहीं उनका अलग हो जाना स्वाभाविक होता है। परन्तु हर मतभेद के लिए कोई गुप्त कारण है, कोई बुरी नीयत है, कोई आंतरिक दुर्बलता है। इस प्रकार की जब चर्चा और प्रचार होता है तो वह अत्यन्त दुखदायी होता है। आज तक मुझे विश्वास है कि उस समय के मतभेद इतने बड़े नहीं थे कि उनके कारण साथी अलग हों। परन्तु जिनको ऐसा लगा कि वे साथ नहीं चल सकते, उनका अलग होना अनावश्यक होते हुए भी समझने लायक हो सकता है। परन्तु नीयत पर शक करना, चरित्र-वध का जहर फैलाना यह तो राजनीति के दायरे के बाहर की बात होती है। मैं अपने तथा साथी आचार्यजी दोनों के ही बारे में कह सकता हूं कि हममें से कोई भी न तो थक गया था, न पद-लोलुपता का ही शिकार हो गया था, न हम यही चाहते थे कि पार्टी कांग्रेस में मिल जाए। हां, इतना है कि आचार्यजी का और मेरा जवाहरलालजी से बड़ा निकट का संबंध था। लेकिन जब हम लोगों की उनसे मुलाकात हो तो उसका यह कोई मानी नहीं था कि उनके साथ समाजवादी आंदोलन को खतम कर देने का कोई षड्यंत्र हम रच रहे हैं। उस एक बार को छोड़कर जबकि जवाहरलालजी ने मेरा तथा पार्टी का सहयोग चाहा था, कभी भी उन्होंने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को अथवा जब सोशलिस्ट पार्टी थी तो उसको, कांग्रेस में मिलाने की या उसके साथ सहयोग करने की कोई बात मुझसे नहीं छेड़ी। परन्तु व्यक्तिगत मित्रता का भी जब

ऐसा राजनीतिक अर्थ निकाला जाता था तो उसका हमारे पास कोई जवाब नहीं था।'

निश्चय ही इस तरह जयप्रकाश द्वारा दलीय राजनीति का परित्याग एक राजनीतिक विस्फोट था। यह कदम उन्होंने सत्तावन में, दूसरे आम चुनाव के कुछ ही महीनों बाद उठाया। यह निर्णय लेना उनके लिए आसान न था। जीवन-भर के साथियों से एकदम संबंधविच्छेद करना कभी आसान नहीं होता। विशेषकर ऐसे साथियों से जिनके साथ-साथ काम किए, जेलें काटीं, अज्ञातवास की जोखिमों से गुज़रे और साथ ही साथ स्वतन्त्रता को राख होते देखा।

जे० पी० ने ऐसे क्षणों पर अपने चिंतन के विकास-क्रम की ओर संकेत करते हुए और ऐसे अंतिम कदम उठाने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए एक लंबा पत्र (पुराने साथियों के नाम) लिखा, जो पहले वक्तव्य के रूप में क्रमशः समाचारपत्रों के कई अंकों में छपा और बाद में 'समाजवाद से सर्वोदय की ओर' नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ।

इस नई दृष्टि और अनुभव को समझने के लिए यूरोप के समाजवादी और शांतिवादी जे० पी० के प्रति आकृष्ट हुए। समाजवादी मित्रों ने यूरोप आने का आग्रह किया। और इंग्लैण्ड की दो-तीन शांतिवादी तथा समाजवादी संस्थाओं की ओर से बाकायदा निमंत्रण मिला और उन्नीस सौ अट्ठावन, अप्रैल के महीने में प्रभावती और सिद्धिराज ढड्ढा के साथ जयप्रकाश लगभग साढ़े चार महीने साइप्रस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्विट्ज़रलैण्ड, हालैण्ड, डेनमार्क, बेलजियम, नार्वे, स्वीडन, आस्ट्रिया, इटली, ग्रीस, पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, इज़राइल, मिस्र, लेबनान और पाकिस्तान की यात्रा पर निकले। एक समाजवादी विचारक के नाते जयप्रकाश का नाम यूरोप और अमेरिका के शिक्षित वर्ग में परिचित रहा है, हालांकि सन् १९२९ में अमेरिका से लौटने के बाद वे लगभग तीस वर्ष याने इस विदेश-यात्रा तक बर्मा छोड़कर भारत से बाहर नहीं गए थे। पर उन देशों के समाजवादी विचारकों और मज़दूर संगठनों से उनका संपर्क बराबर रहा। सन् १९५६ के नवंबर से जब बंबई में एशियाई मुल्कों के समाजवादियों का सम्मेलन हुआ, उस मौके पर इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, इज़राइल आदि देशों से भी कुछ समाजवादी मित्र उसमें आए थे। उस सम्मेलन में जयप्रकाश ने पहली बार अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी श्रोताओं के सामने बड़ी दृढ़ता और स्पष्टता के साथ अपना यह विचार रखा था कि सर्वोदय का मार्ग ही वास्तविक समाजवाद है। राजसत्ता के ज़रिये समाजवाद लाने की कोशिश

ज़्यादा से ज़्यादा 'कल्याणकारी राज्य' तक ही मानव-जाति को ले जा सकती है, मनुष्य-मात्र की आज़ादी, समता और भाईचारे के जो आदर्श हैं, उन तक नहीं। इस सिलसिले में भूदान आंदोलन द्वारा चल रहे लोकशक्ति को जाग्रत् करने के प्रयत्न और उसके बल पर सच्चे समाजवाद की स्थापना होने की संभावना की ओर विदेशों से आए हुए समाजवादियों का ध्यान जयप्रकाश ने आकर्षित किया। जयप्रकाश के विचारों से और लोकनीति की नई पद्धति के प्रति उनकी अडिग निष्ठा और विश्वास के कारण विदेश के समाजवादियों में इन बातों को और भी गहराई से समझने की और इनके बारे में ज़्यादा विचार-विनिमय करने की उत्सुकता पैदा होना स्वाभाविक था।

इस विदेश-यात्रा में करीब-करीब सभी मुल्कों में वहां के प्रमुख राजनैतिक नेताओं के अलावा वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों और अन्य प्रमुख विचारकों से भी बातचीत तथा विचार-विनिमय का मौका आया। करीब-करीब पचास आम सभाओं में जयप्रकाश के भाषण हुए। प्रसिद्ध अणुवैज्ञानिक प्रो० नील्स बोर और प्रोफेसर ओपेनहायमर, नोबेल पुरस्कारप्राप्त विख्यात फ्रेंच साहित्यकार आल्बेयर कामू, गांधीवादी विचारक श्री विलफ्रेड वैलाक, इटली के श्री दैनिलो दोलची और इगनेज़िओ सिलोने, अरब समाजवादी विचारक माइकेल अफलाक, पोलैण्ड के डा० आस्कर लांगे, प्रसिद्ध विचारक साल्वा डी मदरियागा, डेनिस रुजमों, निकलस नोवोकोव आदि कई लोगों से वर्तमान समस्याओं और मानवीय आदर्शों के बारे में व्यक्तिगत विचार-विनिमय भी हुआ।

इतने कुछ ही दिनों बाद यूरोप तथा पश्चिमी एशिया की यात्रा के अनुभवों से प्रेरित होकर जे० पी० ने 'महात्मा गांधी की ओर प्रतिगमन' वक्तव्य के रूप में प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने कहा कि किसी भी राष्ट्र का निर्माण जनता की व्यापक साझेदारी के बिना नहीं हो सकता। वह कहते हैं, 'मैं नहीं जानता कि इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण है, जहां केवल राज्य के प्रयासों से किसी देश का विकास हो गया हो। यह बात लोकतंत्री एवं अधिनायकतंत्री दोनों प्रकार के राज्यों के विषय में सही है। किसी राष्ट्र का निर्माण, निर्माण-कार्य में जनता की व्यापक भागीदारी के बिना, असंभव है। मैं इस कथन पर यथासंभव अधिक से अधिक बल देना चाहूंगा, क्योंकि यही मेरी दृष्टि में इस देश की वर्तमान परिस्थिति का गूढ़ तत्त्व है।'

इसी वक्तव्य में जे० पी० उपाय भी बताते हैं कि यह महान कार्य संपन्न कैसे हो सकेगा। उत्तर कम से कम शब्दों में यह है : 'महात्मा गांधी की ओर

वापस जाकर'। देश के नेता यह स्वप्न देखना छोड़ दें कि केवल राजनीतिक सत्ता से ही काम हो जाएगा। उन्हें जनता के बीच जाना होगा. उसके बीच रहकर काम करना होगा तथा उसकी सेवा, सहायता करते हुए उसका मार्ग-दर्शन करना होगा। वे यह सब अपने दलों को मजबूत बनाने के लिए, अपने लिए 'वोट' प्राप्त करने के लिए नहीं करेंगे, बल्कि इसलिए करेंगे कि जनता जागे और राष्ट्रीय विकास के कार्यों में बुद्धि, हृदय और हाथ लगाए। अगर इस कार्यक्रम को प्रभावकारी बनाना है और अगर उसके द्वारा राष्ट्र पर आवश्यक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पैदा करना है, तो सर्वोच्च नेताओं को इस जनान्दोलन का नेतृत्व करने के लिए आगे आना होगा।जनता के बीच जाने के लिए पुनर्निर्माण का एक ठोस, निर्देशीय कार्यक्रम तैयार करना कठिन नहीं होना चाहिए। विनोबाजी का कार्यक्रम तो उपस्थित है ही। इसमें और कुछ जोड़ा जा सकता है अथवा एक नया कार्यक्रम ही निर्धारित किया जा सकता है। इसके बाद इस आंदोलन को प्रभावकारी बनाने के लिए लाखों स्वयंसेवकों को गतिमान करना आवश्यक होगा। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि यदि नेतागण यह क्रांतिकारी कदम उठाने के लिए तैयार हों और देश के युवकों का आह्वान करें तो जितने स्वयंसेवकों को वे काम में लगा सकते हैं, उससे अधिक स्वयंसेवक उन्हें तुरंत मिल जाएंगे। मेरा निश्चित विश्वास है कि पांच वर्षों की अवधि में ऐसा एक आंदोलन देश की परिस्थिति में क्रांति ला सकता है तथा जनता को निराशा के गर्त से ऊपर उठा सकता है और लाखों हाथों को सक्रिय बना सकता है। इसके अलावा, यह आंदोलन प्रशासन और शासन पर तथा सामान्य सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन पर सुधारात्मक प्रभाव भी डालेगा। मेरे दिमाग में यह स्पष्ट है कि यदि भारत में लोकतंत्र की रक्षा और उसका पुनर्निर्माण होना है तथा राष्ट्र का विकास होना है तो इसको छोड़ और कोई विकल्प आज नहीं है।'

सन् उनसठ के जनवरी माह के मध्य में जे० पी० दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, पटना आदि जगहों से होते हुए फिर सोखोदेवरा पहुंचे। यहां आकर जे० पी० को जो शांति मिलती है, वह अन्यत्र कहीं नहीं। इस आश्रम के बारे में कुछ बताते हुए जे० पी० हमेशा अपनी सजीव स्मृतियों का सहारा लेते हैं।

भूदान आंदोलन का कार्य उन्नीस सौ बावन से शुरू हुआ और चौवन तक भूप्राप्ति का काम विशेष रूप से हुआ। उसी समय जयप्रकाश ने जीवनदान दिया और यह सोचा कि ग्रामीण समाज की रूपरेखा क्या होगी और ग्राम-

समुदाय में किस प्रकार विधायक ढंग से परिवर्तन और निर्माण का कार्य होगा यह भी प्रश्न आए। जे० पी० ने इसी प्रश्न के उत्तर की खोज में पांच मई, सन् चौवन को ग्राम-निर्माण मंडल सर्वोदय आश्रम की स्थापना सोखोदेवरा में की थी।

सोखोदेवरा आश्रम की बात करते हुए जे० पी० ग्राम-स्वराज्य के इन केन्द्रों और प्रखंडों के नाम लेना कभी नहीं भूलते---गोविन्दपुर (मिर्जापुर, उत्तरप्रदेश), खादीग्राम रुपौली प्रखंड, कौआकोल, झाझा चकाई प्रखंड, बाराचट्टी प्रखंड और मुसहरी प्रखंड। वस्तुतः ग्राम-स्वराज्य के ये सघन क्षेत्र सर्वोदयी जयप्रकाश नारायण के मानव-तीर्थ भी हैं और उनके मानसपुत्र समान भी हैं। जाड़ा, गर्मी, बरसात, सभी मौसमों और स्थितियों में इन्हीं क्षेत्रों में एक किसान, एक सिपाही अथवा संत के रूप में काम करते हुए जे० पी० ने सच्चे ग्राम-स्वराज्य की अनुभूति पाई है।

वर्षों बाद सरकार ने सन् उनसठ में पंचायती राज का कार्यक्रम लागू किया। किन्तु उसके पीछे प्रेरणा गांधी की विचारधारा के अनुसरण की नहीं, बल्कि सामुदायिक विकास योजना के लिए ग्राम-स्तर पर एक सरकारी ढांचा खड़ा करने की थी। इसीलिए जे० पी० के शब्दों में 'आज पंचायत स्थानीय स्वशासन की इकाई बनने के बदले राज्य सरकार की इकाई बनकर रह गई है।'

सोखोदेवरा से जे० पी० फरवरी में राजस्थान के दौरे पर गए। उन्नीस तारीख को अजमेर से मोटर में बैठकर देवली गए। उस समय विनोबा का पड़ाव वहीं था। जे०पी० प्रभावती के साथ विनोबा से मिले। देवली कैम्प जेल में जे० पी० जिस कमरे में वर्षों पूर्व बंदी थे, उसी कमरे में विनोबा ने अपना निवास बनाया था।

उनसठ के मध्य में जयप्रकाश को विश्व की अति दुखांत घटना ने व्यथित कर दिया। चीन ने निर्ममता से तिब्बत को पदाक्रांत कर समाजवाद के इतिहास में (इससे पूर्व रूस द्वारा हंगरी का दमन भी इसी प्रकार हुआ था) एक कालिमापूर्ण अध्याय जोड़ा। जे० पी० ने मई उनसठ में कलकत्ता तथा मद्रास के तिब्बत सम्मेलन में मानवीय अधिकारों का प्रश्न उठाया। उन्होंने अनुभव किया कि यद्यपि बुद्धिमान राजनीतिज्ञ तिब्बत के प्रश्न को हारी हुई लड़ाई लड़ना मान सकते हैं, किन्तु मानवीय स्वतंत्रता के जहां-जहां संघर्ष हैं, जयप्रकाश वहां-वहां उनके साथ हैं। कलकत्ता में तीस मई को महाजाति सदन के हाल में हुए अखिल भारतीय तिब्बत सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में

जे० पी० ने कहा—'तिब्बत मरेगा नहीं, क्योंकि मानव की स्वतंत्र चेतना कभी नहीं मरी है। कम्यूनिस्ट चीन कभी सफल नहीं होगा, क्योंकि मनुष्य कभी गुलाम नहीं रह सकता।'

मई, जून और जुलाई में कलकत्ता और मद्रास में तिब्बत सम्मेलन के बाद जे० पी० अगस्त के प्रारंभ में फिर सोखोदेवरा लौटे।

इनसट के अंत में जे०पी० ने अखिल भारत सर्वसेवा संघ, वाराणसी, द्वारा अंतरंग प्रसार के लिए अपना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निबन्ध 'भारतीय राज्य-व्यवस्था का पुनर्निर्माण' लिखा। वे लोकतंत्र के पाश्चात्य ढांचे को अस्वीकार करते हैं, क्योंकि वह जनता को अपने कामकाज के प्रबन्ध में भाग लेने का अवसर नहीं प्रदान करता। यह, उनके अनुसार, मनुष्य के सामाजिक स्वभाव तथा समाज के वैज्ञानिक संगठन, दोनों के विरुद्ध है। इसके स्थान पर वे लोक-तंत्र के एक ऐसे ढांचे का प्रतिपादन करते हैं जो समाज की एकीकृत कल्पना पर आधारित है और जो राजनीतिक दलों के मध्यवर्तित्व के बिना, व्यक्ति को अपने कामकाज के प्रबंध में भाग लेने का यथासंभव पूर्णतम अवसर प्रदान करता है। जयप्रकाश की दृष्टि में, आज स्थिति यह है कि राजनीतिक दल जनता के वास्तविक भाग्य-विधाता बन गए हैं, परन्तु जनता का उनपर कोई नियंत्रण नहीं चलता। यहां तक कि दलों के नामांकित सदस्यों का भी नीति-निर्माण में या आंतरिक प्रशासन में कोई प्रभाव नहीं होता। यह दलीय व्यवस्था अनेक बुराइयों की जननी है : दलीय प्रतिद्वन्द्विताएं झूठी नेतागिरी को जन्म देती है, राजनीतिक नैतिकता को दबाती है, विवेकहीनता तथा कपटाचरण एवं षड्यंत्र को बढ़ावा देती है। जहां एकता की आवश्यकता है, वहां दलों द्वारा विवाद खड़े किए जाते हैं, और जहां मतभेदों को न्यूनतम करना चाहिए, वहां उनको वे अतिरंजित करते हैं। ये दल अक्सर दलीय हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर रखते हैं। चूंकि सत्ता का केन्द्रीयकरण नागरिक को शासन कार्य में भाग लेने नहीं देता, इसलिए दल अथवा राजनेताओं के लघु गुट ही जनता के नाम पर शासन करते हैं और लोकतंत्र एवं स्वशासन का भ्रम पैदा करते हैं। लेकिन मुख्य अपराधी दलीय व्यवस्था नहीं, बल्कि संसदीय लोकतंत्र है, जो उसको जन्म देता है और उसके बिना काम नहीं कर सकता है। अतः जयप्रकाश संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर, भारत की अपनी परम्पराओं तथा मनुष्य एवं समुदाय के वास्तविक स्वभाव के अनुकूल, नये ढंग की राज्यव्यवस्था की

स्थापना का सुझाव प्रस्तुत करते हैं। इसको वे सामुदायिक या दलमुक्त लोक-तंत्र की संज्ञा देते हैं।

उन्नीस सौ साठ से आगे पूरे दशक तक और कुछ उसके बाद भी जे०पी० का जीवन एकसाथ जीवन-मूल्यों के तीन बड़े मोर्चों पर लड़ने की गौरवगाथा है। और यह पूरा काल उनके सर्वोदयी व्यक्तित्व का परम ज्योतिर्मयी चरण है।

*राष्ट्रीय मोर्चे पर अक्साई चिन का प्रसंग

*वैधिक (लीगल) की अपेक्षा नैतिक मोर्चे पर---कश्मीर का प्रश्न।

*और परम मानवीय मोर्चे पर---नागा, डाकू और नक्सलवादी संघर्ष।

जे० पी० का संदर्भ हमेशा मनुष्य रहा है। राज्य का भूगोल अथवा उसका शासन तंत्र नहीं। जहां कहीं भी मानव-मूल्यों पर किसी तरह भी आक्रमण हुआ है, जे० पी० ने उसके खिलाफ संघर्ष छेड़ा है और मनुष्य की स्वतंत्रता और उसके व्यक्तित्व की रक्षा हेतु कर्मरत हुए हैं।

जे० पी० की इस गौरवगाथा की पृष्ठभूमि है उनका अब तक का जीवन, उनकी जीवन-यात्रा। इसी चरण में आकर जे० पी० ने अपने बारे में कहा, 'मेरे पिछले जीवन का रास्ता बाहर के लोगों को भले ही टेढ़ा-मेढ़ा और पेचीदा लगे, वे उसे अनिश्चित और अंधकार में टटोलना समझें, किन्तु जब मैं अपने अतीत पर दृष्टि डालता हूं, तो मुझे उसमें विकास की एक अटूट रेखा दिखाई देती है। उसमें राह खोजने का प्रयत्न था, इससे इनकार नहीं किया जा सकता, किन्तु वह अंधकारमय हर्गिज़ नहीं था। उसमें एक ऐसी पूर्ण ज्योति थी, जो शुरू से ही न कभी धुंधली पड़ी, न बदली और जो बराबर इस पेचीदा दीखने वाले मेरे रास्ते पर मेरा मार्गदर्शन करती रही है। कम से कम मैं तो इस टेढ़े-मेढ़े रास्ते के लिए दुखी नहीं हूं, क्योंकि जिस रास्ते पर अब चलने का मैंने निश्चय किया है, उसके संबंध में मैं निश्चिन्त हूं।'

चेतना के स्तर से इस सर्वोदयी चरण में जयप्रकाश की व्यक्तिगत यात्रा का चरमबिन्दु हमें मिलता है। हम यहां से उनके पूरे विकास-क्रम को अब स्पष्ट देख सकते हैं :

*मार्क्स की वैज्ञानिकता

*गांधी और विनोबा की आध्यात्मिकता

*और जे० पी० की अपनी सामाजिकता, जिसे लेकर वह इस दौरे में

एक नये समाजशास्त्र का निर्माण करने में जुटते हैं। एक शब्द में यदि हम कहें तो इनका वह नया समाज है सामुदायिक समाज जिसके लिए जे० पी० आगे सामुदायिक राज्यव्यवस्था के निर्माण के लिए कृतसंकल्प होते हैं। इसके लिए यह एक बुनियादी शर्त, चुनौती को स्वीकार करते है। गांव एक वास्तविक समाज बने। गांव एक समाज तभी बनेगा जब गांव के सभी लोगों के हितों में समानता, सहभाग और सहयोगभाव होगा। लोकतंत्र तब होगा, जब तंत्र का संचालन स्वयं लोक करेगा; लोक-प्रतिनिधि नहीं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूरे बारह वर्ष बाद पं० जवाहरलाल नेहरू का ध्यान गांधीजी की पंचायती राज की कल्पना की ओर गया। इसका मुख्य कारण नेहरूजी की सामुदायिक विकास योजना की देशव्यापी विफलता थी। जब नेहरू ने देखा कि उनके विकास-कार्यक्रमों में जनता का सहयोग नहीं मिल रहा है, तो इसके कारणों की छानबीन के लिए उन्होंने श्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में पंचायती राज स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया और नेहरूजी ने उसे स्वीकार किया। इस प्रकार पंचायती राज की योजना विकास कार्यक्रमों में जनसहयोग प्रेरित करने की युक्ति के रूप में लागू की गई। इसका यह अर्थ नहीं कि नेहरू ने इस नई योजना का 'राजनीतिक अर्थ' और 'क्रांतिकारी महत्त्व' नहीं समझा था। उन्होंने और उनके प्रमुख सहयोगी श्री एस० के० दे ने, जो उस समय सामुदायिक विकास विभाग के मंत्री थे, सोच-समझकर नीचे के समुदायों को वास्तविक सत्ता समर्पित करने की योजना स्वीकार की थी। जयप्रकाश ने इस योजना में एक क्रांतिकारी विचार की स्वीकृति देखी। स्वयं उनका चिंतन भी इस दिशा में पहले से ही चल रहा था। अतः उन्होंने संपूर्ण हृदय से पंचायती राज की योजना को समर्थन दिया और उसके प्रयोगों को सफल बनाने के लिए अपनी ओर से तथा अपने सर्वोदय आंदोलन की ओर से सक्रिय सहयोग देने का प्रयास भी किया।

इस प्रकार जयप्रकाश के चिंतन और नेहरू की योजना का मिलन शायद पहली बार एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रयोग के दौरान हुआ। जयप्रकाश ने पंचायती राज के प्रयोग की सफलता के लिए अपनी ओर से कुछ नहीं उठा रखा। उन्होंने इसके पक्ष में लेख लिखे, इस विषय पर आयोजित गोष्ठियों, परिसंवादों एवं सभा-सम्मेलनों में भाग लिया और सारे देश में इसके अनुकूल वातावरण बनाने की कोशिश की। उस समय गैरसरकारी नेताओं में

जयप्रकाश ही पंचायती राज के सबसे बड़े प्रवक्ता थे, यह निःसंकोच कहा जा सकता है।

परन्तु पंचायती राज की सरकारी योजना और जयप्रकाश की कल्पना में एक महत्त्वपूर्ण अंतर था, और है। सरकारी योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद् के माध्यम से जनता को विकास का दायित्व और अधिकार सौंपकर विकास-कार्यक्रमों में उसका सक्रिय सहयोग प्राप्त करना था। इस दृष्टि से लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में जो कदम उठाए गए, उनकी एक सीमा थी। वास्तव में यह जिला परिषद् के ऊपर राज्य सरकार और केन्द्र सरकार के अधिकार ज्यों के त्यों रखकर संसदीय व्यवस्था में ही पंचायती राज को 'फिट' करने की योजना थी, जबकि जयप्रकाश पंचायती राज के द्वारा सामुदायिक राज्य व्यवस्था की नींव डालना चाहते थे और सिर के बल खड़े राज्य-सत्ता के 'पिरामिड' को उलटकर उसे उसके चौड़े आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। जैसाकि आगे चलकर प्रकट हुआ, सरकारी प्रयोग ग्राम पंचायत से जिला परिषद् तक पंचायती लोकतन्त्र और उसके ऊपर संसदीय लोकतन्त्र की खिचड़ी कल्पना के आधार पर शुरू किया गया था। जयप्रकाश के शब्दों में यह लोकतन्त्र के दो भिन्न सिद्धान्तों एवं प्रक्रियाओं का बिलकुल अनमेल मिश्रण था जो पानी और तेल के समान कभी मिल नहीं सकते थे। उन्होंने इस योजना की विसंगतियों की ओर बार-बार सरकारी नीति-निर्माताओं का ध्यान आकृष्ट किया। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के विचार को ग्रामसभा से लोक सभा तक के सम्पूर्ण ढांचे पर लागू करने की आवश्यकता पर वे हमेशा बल देते रहे।

जून के अंत तक अफ्रीका से लौटकर दिल्ली में परमाणु अस्त्रों के विरोध में विश्व के शांतिवादी 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' में एकत्र हुए। जे० पी० ने पूर्ण निःशस्त्रीकरण का प्रतिपादन किया और जुलाई के अंत में जांसटन द्वीप में होने वाले अमेरिकी परमाणु परीक्षण के विरोध में सत्याग्रहियों को ले जाने की कल्पना की। पर कम समय और अधिक दूरी, विदेशी मुद्रा के अभाव के कारण नौका द्वारा सत्याग्रहियों को भेजने की योजना पूरी न हो सकी।

बारह अक्तूबर को चीन ने नेफा पर आक्रमण किया और बहुत ही तेजी से चीन ने भारत की सीमा का अतिक्रमण करना शुरू किया। भारतीय सेना को बुरी तरह से हराकर और अक्साई चिन का सारा हिस्सा दबोचकर चीन ने एकाएक युद्ध बन्द कर दिया। इस पूरी घटना को जे० पी० ने चीन की चुनौती

माना। उसे सैनिक और वैचारिक दो प्रकार के आक्रमणों की संज्ञा दी। 'चीन की चुनौती', 'यह वैचारिक आक्रमण है', 'चुनौती का उत्तर' ये तीन वक्तव्य दिए। पहले वक्तव्य में जे० पी० ने कहा, 'अभी हमारे सीमा-प्रदेश के बारे में चीन का झगड़ा हुआ और कई हज़ार वर्गमील हमारी भूमि पर चीन ने कब्ज़ा कर लिया, ऐसा कहा जाता है। अगर हमने सैनिक तैयारी की तो यह जो भूमि है, अगर बातचीत से हमें प्राप्त नहीं होती है, तो लड़कर फिर हमें वापस लेनी चाहिए। इस प्रकार चीन और भारत के बीच लड़ाई हो, तो उसका क्या परिणाम होगा? चीन भी फिर तैयारी करेगा और वह भी इस बात की कोशिश करेगा कि भारत ने जो लिया, वह छीन ले। इस प्रकार से भारत-चीन के झगड़े से दुनिया की लड़ाई भी शुरू हो सकती है। तो यह सारा करने के बाद भी भारत-चीन का झगड़ा खत्म न हो, बल्कि उल्टे सारी दुनिया में आग लग जाए, तो क्या होगा?'

दूसरे वक्तव्य में कहा, 'चीन ने अक्तूबर में जब हमला किया तो सारे देश में एकता की अपूर्व लहर आई। उस उत्साह और भावना का एक असर सारे देश पर हुआ और चीन पर भी हुआ। हम लोगों की छाती भी खुशी से फूल उठी कि आखिर इस देश की अपनी एक आन है, जिसपर वह मर मिटने को तैयार हो जाता है। लेकिन केवल भावना से काम नहीं होता। चीन साम्यवादी देश है। उसके पास एक बड़ी भारी सेना (पच्चीस लाख) है। हमारी फौजी तैयारी उसके मुकाबले में बहुत थोड़ी थी। लेकिन चीन का वह खतरा असली नहीं है। सबसे बड़ा खतरा वैचारिक आक्रमण का है। इसकी ओर देश के नेताओं ने भी संकेत किया है। सैनिक आक्रमण उसका एक हिस्सा है। वह चीनी साम्यवाद का प्रसार सारे एशिया में करना चाहता है।'

उन्नीस सौ तिरसठ में कामराज योजना का कार्यान्वयन हुआ था। पच्चीस अगस्त को जे० पी० ने गद्दी त्यागने वाले कांग्रेसी नेताओं को धन्यवाद दिया था। आठ सितम्बर को गौहाटी पहुंचकर अपने एक वक्तव्य में जे० पी० ने कहा कि 'मैं नहीं समझता कि प्रधानमंत्री नेहरू ने कामराज योजना की भावना के अनुरूप आचरण किया है।'

दस से बारह अगस्त को विनोबा की यात्रा बिहार के सिंहभूमि जिले में हुई। बारह अगस्त को बहरागोड़ा पड़ाव पर उन्होंने बिहार सर्वोदय मंडल को विघटित करने का सुझाव दिया। इकतीस अगस्त को पटना में बिहार सर्वोदय मंडल की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। अध्यक्ष थे जे० पी०। विघटन के प्रश्न पर

जे० पी० ने कहा कि कोई भी विचारक संगठन को बहुत महत्त्व नहीं देता। संगठन होना चाहिए या नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। खासकर जब हम अहिंसक समाज के संदर्भ में सोचते हैं। हम समाज का ऐसा ही संगठन बनाना चाहते हैं, जो प्रेम के आधार पर चले। उसमें व्यक्ति स्वतन्त्र हो, बन्धन-मुक्त हो, नियन्त्रण-मुक्त हो।

बिहार प्रादेशिक सर्वोदय मंडल के विघटन के बाद, जे० पी० ने गया जिले में ग्रामदान के काम को सघन रूप से करने का निश्चय किया। इसके साथ ही शांति सेना का काम भी सघन रूप से करना शुरू किया। इस सिलसिले में उनका एक व्यापक दौरा जिले के विभिन्न भागों में जून-जुलाई में हुआ।

सितम्बर के अंत में पंचदिवसीय गोष्ठी का आयोजन 'योजना आयोग' की ओर से दिल्ली के भारत अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र में 'विकासशील अर्थव्यवस्था में सामाजिक कल्याण' विषय पर हुआ। छब्बीस सितम्बर को जे० पी० ने व्याख्यान दिया, 'सामाजिक क्रांति के लिए जनशक्ति का पुनर्जीवन आवश्यक है। जनता की आंतरिक शक्ति, जो गुलामी के कारण दुर्बल हो गई है, उसे सामाजिक कर्तव्य की प्रक्रिया से पुनर्जीवित करने का काम सामाजिक कार्यकर्ताओं का है।'

ग्यारह अक्तूबर, जे० पी० के जन्मदिन पर गया जिले में बाराचट्टी अंचल के ग्रामदानी गांव मनफर में बहुत बड़ा आयोजन किया गांव वालों ने। उसमें जे० पी० ने कहा, 'अध्यात्मवाद एवं भक्ति के कारण नहीं, क्रांतिकारी विचारों के कारण मुझे मृत्यु से बिलकुल भय नहीं है।'

सन् तिरसठ के नवंबर में आरामबाग का संघ अधिवेशन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था। ग्रामदान आंदोलन के बारह वर्ष बीत चुके थे। बीते हुए समय के अनुभवों का वहां गहरा परीक्षण हुआ और उसकी रोशनी में आगे का मार्ग निश्चित हो सके इसीपर जे० पी० ने बल दिया। आरामबाग में ही भूमि-समस्या विषय पर एक परिसंवाद आयोजित हुआ। जे० पी० के विचार में यदि जनता आपसे-आप अपनी समस्याएं सुलझा ले तथा अपने जीवन को व्यवस्थित और विकसित कर सके, तो न सर्वसेवा संघ की आवश्यकता रहेगी, न किसी पार्टी या पक्ष की और न राज्य-प्रशासन आदि की। इस प्रकार की जनशक्ति का निर्माण हो, यही तो सर्वोदय आंदोलन का मुख्य उद्देश्य है।

संघ अधिवेशन के समाप्त होने पर विनोबा के पड़ावों पर चलता रहा।

आरामबाग सम्मेलन में ही जे० पी० ने निर्णय लिया कि देश-भर में घूमने के बजाय किसी क्षेत्र को चुनकर वहां सघन रूप से ग्रामदान तथा शांति सेना का काम करूं। इसके लिए जे० पी० ने गया, पूर्णिया और संथाल परगना इन तीनों ज़िलों में काम करने का संकल्प लिया।

इन दिनों जे० पी० टांगों में बराबर तकलीफ रहने के कारण बहुत पैदल नहीं चल सकते थे– ज्यादा से ज्यादा तीन मील पैदल चलते थे। इसीलिए जे० पी० एक-एक अंचल में तीन-चार पड़ाव डालकर पैदल ग्रामदान का कार्य करते थे।

उन्नीस सौ चौंसठ के शुरू में जवाहरलाल नेहरू के अस्वस्थ हो जाने के बाद 'नेहरू के बाद कौन ?' एक राष्ट्रीय प्रश्न बनकर छा गया। इसके उत्तर में जे० पी० ने कहा कि यह प्रश्न हमारे कमज़ोर मानस का परिचायक है। नेहरू के बाद कौन ?—इस प्रश्न का उत्तर है– –नेहरू के बाद जनता। हमारे देश में जनता का राज है। इतिहास की एक विशेष परिस्थिति में नेहरू इस देश के प्रधानमंत्री बने। सोलह साल की आज़ादी के बाद अब जनता इतनी जागरूक तो हो ही गई होगी कि वह देश को एक नया नेतृत्व दे सके। अगर जनता में ऐसी जागरूकता नहीं आई है, तो ऐसी जागरूकता लाने का प्रयास करना चाहिए। जो लोग जयप्रकाश नारायण को प्रधानमंत्री के पद पर देखना चाहते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि जयप्रकाश तो जनता को जागरूक बनाने का महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। नेहरू के बाद कौन ?– –इस प्रश्न से भी ज्यादा महत्त्व का प्रश्न है : नेहरू के बाद क्या ? अगर इस देश में लोकतंत्र को ज़िन्दा रहना है, तो इस दूसरे प्रश्न का उत्तर देना होगा। यदि इस दूसरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया गया, तो नेहरू के बाद चाहे जो व्यक्ति प्रधानमंत्री बने, लोकतंत्र की बुनियाद आज की तरह कमज़ोर ही बनी रहेगी।

पटना में तीस जनवरी को राष्ट्रपिता गांधी की पुण्यतिथि के अवसर पर एक महती जनसभा में भाषण करते हुए जे०पी० ने कहा कि भारत के विभाजन से किसी भी सवाल का हल नहीं हुआ। आपने कहा कि विभाजन का सिद्धांत और प्रेरणा गलत थी, इसीलिए परिणाम उलटा हुआ। जयप्रकाश ने आगे कहा, 'अब भारत और पाकिस्तान के नेताओं में दोनों देशों को एक-दूसरे के करीब लाने की हिम्मत और दूरदर्शिता होनी चाहिए और दोनों को यह समझना चाहिए कि उनके सारे सवालों का हल तभी होगा, जब दोनों देश

मिलकर तय करेंगे कि उन्हें फिर एक-दूसरे के नज़दीक आना है और फिर एक-दूसरे को एक-दूसरे के बंधन में बांधना है।' आगे जे०पी० ने कहा कि फिर संयुक्त भारत हो जाए, यह संभव नहीं है। लेकिन ऐसा कुछ होना चाहिए कि दोनों देश एक-दूसरे के निकट आवें। दूसरा कोई रास्ता दीखता नहीं है।

जून सन् सत्तर के शुरू की घटना है। जयप्रकाश का शरीर थका हुआ था और लोगों के आग्रह से थोड़ा विश्राम के लिए वह हिमालय की गोद में पहुंचे थे। पौड़ी नामक स्थान में जे० पी० को बिहार से एक पत्र मिला और उससे मालूम हुआ कि मुज़फ्फरपुर के नक्सलवादियों ने ज़िला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष बद्रीनारायण सिंह और मंत्री गोपाल मिश्र को मृत्यु के परवाने दिए हैं। प्राप्त सूचना के अनुसार उनकी हत्या की तारीखें क्रमशः पांच और सात जून निश्चित की गई थीं।

इस समाचार से जे० पी० को धक्का लगा और साथ ही साथ खुशी भी हुई। धक्का इसलिए लगा कि दो सहयोगियों का जीवन संकट में पड़ा था और खुश होने के कारण थे कि इन मृत्यु-परवानों से जे० पी० को लगा कि नक्सलवादियों की कार्यपद्धति में एक बड़ा परिवर्तन हुआ है और यह आभास हुआ कि देश के महान नेताओं, जैसे रामकृष्ण परमहंस देव, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, महात्मागांधी, सुभाषचंद्र बोस आदि की मूर्तियों, चित्रों और उनकी पुस्तकों जैसी निर्जीव वस्तुओं पर प्रहार करना छोड़ उन्होंने अब उन नेताओं के जीवित अनुयायियों और प्रशंसकों को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया था।

सर्वोदय कार्यकर्ताओं के जीवन पर उपस्थित इस संकट को जे० पी० ने ईश्वरीय वरदान माना। इधर कुछ अर्से से जे० पी० महसूस कर रहे थे कि सर्वोदय आंदोलन की आग ठंडी हो रही है और इसके कार्यकर्तागण निस्तेज और निष्प्राण बन रहे हैं। इसका एक कारण यह था कि सर्वोदय काम का रूप कुछ इतना सौम्य था कि उसमें इनके व्यक्तिगत जीवन पर कोई खतरा नहीं उपस्थित होता और न उसमें किसी बड़े बलिदान की मांग की जाती थी।

उत्तराखंड में जे० पी० को जब वह समाचार मिला तो उससे उनकी यह आंतरिक अनुभूति तीव्र और घनीभूत हो गई तथा हृदय और मस्तिष्क दोनों ने असाधारण रूप से एकमत होकर अविलम्ब कुछ करने के लिए प्रेरित किया। हृदय ने, हर मानवीय हृदय की भांति, आदेश दिया कि जिन्हें हत्या की धमकी दी गई है, मैं उनके बीच फौरन पहुंच जाऊं और उनके संकट में भागीदार

बनूं। मस्तिष्क ने बार-बार कहा कि नक्सलवादियों की धमकी यह सिद्ध कर दिखाने के लिए एक त्वरायुक्त आह्वान है कि किस प्रकार हिंसा की चुनौती का उपयोग ठोस कार्य द्वारा विनोबाजी के ग्राम-दान ग्राम-स्वराज्य आंदोलन के रूप में शुरू की गई अहिंसक समाज-परिवर्तन एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को तेज करने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार तलाश की भावना से एक छोटा-सा कार्यक्रम लेकर मैं इस क्षेत्र में इस संकल्प के साथ आया कि या तो यह काम पूरा होगा या मेरी हड्डी गिरेगी। मुजफ्फरपुर पहुंचकर मैंने उस जिले के मुसहरी-प्रखण्ड में जम जाने का निश्चय घोषित किया, जहां नक्सलवादी लोग सक्रिय थे और चार हत्याएं तथा एक सशस्त्र डकैती की थी और हमारे दो प्रमुख कार्यकर्ताओं को मृत्यु के परवाने दिए थे।'

तीन जून को मुजफ्फरपुर पहुंचते ही जे० पी० ने उसी शाम उन दोनों व्यक्तियों से तुरंत मिलने की इच्छा प्रकट की जिन्हें क्रमशः पांच और सात जून को कत्ल कर देने की धमकी के पत्र मिले थे। एक गोपालजी मिश्र से तो मुजफ्फरपुर में ही मुलाकात हो गई, मगर दूसरे बद्रीनारायणसिंह को ढूंढते हुए जे० पी० शहर से बाइस मील दूर देहात के रुन्नी-सैदपुर भंडार तक उस गर्मी के मौसम में लम्बी यात्रा की थकावट के बाद भी पहुंच गए। जिसने जहां उन्हें इस अप्रत्याशित ढंग से देखा – भौचक्का रह गया।

बात फैलने लगी। खादी और सर्वोदय कार्यकर्ता उनके इर्द-गिर्द जमा होने लगे। सबके मन यह सोचकर जे० पी० के प्रति भाव-विभोर होने लगे कि जे० पी० ने हम कार्यकर्ताओं के जीवन को महत्त्व और आदर दिया एवं उसकी रक्षा में इतने तत्पर हुए। चार जून से जे० पी० ने इस धमकी-भरे पत्र के बारे में चर्चा प्रारंभ की- खादी और सर्वोदय कार्यकर्ताओं से, पुलिस एवं अन्य सरकारी अधिकारियों से, शहर के बुद्धिजीवी एवं ग्रामीण जनता से, राजनीतिक पार्टी एवं अन्य नेताओं से। जैसे-जैसे चर्चा बढ़ती गई स्थिति की गम्भीरता और समस्या की जटिलता जे० पी० के मानस में घर करती गई।

देश और प्रांत की चतुर्दिशा में फूट पड़ने वाली निराशा की विकृत तस्वीर ने नक्सलवाद के नाम से जनचेतना को किस सीमा तक प्रभावित किया है, यह बात उभरकर आई। जे० पी० के आने के पूर्व मुसहरी-प्रखंड, जो मुजफ्फरपुर शहर के चारों ओर फैला हुआ है—'नक्सलवाद' का प्रभावकारी गढ़ मान लिया गया था। अनेक हत्याएं बड़ी निर्ममता और नक्सलवादी नारे के साथ

पूर्व-सूचना देकर की जा चुकी थीं। दर्जनों व्यक्तियों को मौत के परवाने (धमकी-भरे पत्र) दिए जा चुके थे। कई डकैतियां हो चुकी थीं। लूट-पाट और आगजनी हो चुकी थी। पुलिस इन घटनाओं को रोकने में विफल प्रमाणित हो रही थी और जन-साधारण का सरकार पर से भरोसा क्षीण हो गया था। बड़ी संख्या में शासन और व्यवस्था के नाम पर गरीब लोग जेल में थे या फरार थे। हर अजनबी भय का कारण था। गांव का हर समुदाय दूसरे से डरा हुआ था। भय, आतंक और दमन के कारण जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। सब असहाय थे।

जे० पी० ने हर तरह के लोगों से चर्चा की और उन्होंने स्थिति की गंभीरता को समझा। जो कारण मुसहरी में इन परिस्थितियों के लिए जिम्मेवार हैं, वह थोड़े-बहुत सारे देश में मौजूद हैं और जो विकृत स्थिति आज मुसहरी में पैदा हो गई है, वह कल सारे देश में पैदा हो सकती है। तो फिर क्या हो? और तब जे० पी० ने घोषणा की :

'कल से मैं और प्रभावती गांव-गांव घूमेंगे।'

मुजफ्फरपुर में आठ जून, सन् सत्तर को आयोजित एक विशाल जनसभा में जयप्रकाश नारायण ने उस सभा को शहर की अपनी आखिरी सभा बताते हुए इस महान क्रांतिकारी और ऐतिहासिक निर्णय की घोषणा की कि कल से वे स्वयं और प्रभावतीजी गांव-गांव में ग्राम-स्वराज्य के संदेश लेकर जाएंगे। अत्यन्त गंभीर और भावपूर्ण मुद्रा में जयप्रकाश ने सभा में उपस्थित जनता को संबोधित करते हुए कहा, "कोई यह न समझे कि सत्याग्रह के तरकश के सारे तीर निकल चुके हैं, खत्म हो चुके हैं। सर्वोदय आंदोलन ने सत्याग्रह का, 'लोक-शिक्षण' का, प्रथम चरण बड़े पैमाने पर पूरा किया है। अब विचार की शक्ति प्रकट करने के और कार्यक्रम को और अधिक सघन और प्रभावकारी बनाने के लिए सत्याग्रह का दूसरा चरण शुरू होने जा रहा है। कल से मैं और प्रभावती मुसहरी-प्रखण्ड के गांव-गांव में घूमेंगे। आपके दरवाजे पर जाएंगे और आपको समझाएंगे। जरूरत हुई तो आपके यहां हम दोनों भूखे रहकर धरना देंगे और आपसे यह कहेंगे कि अगर आप हमें खिलाना चाहते हैं तो अपने गांव के भूखों को खिलाने की व्यवस्था करें। उन्हें अपनी भूमि का बीसवां भाग तो कम से कम दें।'

जे० पी० ने मुजफ्फरपुर के दो प्रमुख कार्यकर्ताओं की हत्या करने की नक्सलवादियों की धमकी और मुसहरी-प्रखण्ड में व्याप्त आतंक के कारण

अपनी सुरक्षा के संबंध में कहा, 'यह न समझा जाए कि हम धमकियों से या हत्या से डरने वाले हैं। हम तो बराबर घूमते रहते हैं। चाहे कोई कभी भी हमें मार सकता है। सारी संरक्षण-व्यवस्था के बावजूद जब गांधी और कैनेडी तक को नहीं बचाया जा सका, तो हत्या करने पर उतारू आदमी से दूसरे का बचाव कहां तक हो सकेगा ?···हमें अपनी हत्या की जरा भी चिन्ता नहीं है। हमें जब तक बचाना चाहेगा, भगवान बचाएगा, जब मारना चाहेगा, मारेगा।'

जे० पी० ने यह भी स्पष्ट किया कि 'यह नहीं समझना चाहिए कि नक्सलवादियों की धमकी के कारण ही हम यहां आए हैं। हम तो ग्राम-स्वराज्य का काम कर ही रहे थे, उसको और अधिक गतिशील और प्रभावकारी बनाने की आवश्यकता महसूस हुई, इसलिए आकर इस प्रकार काम में लग रहे हैं।'

अपने इस निर्णय के अनुसार जे० पी० और प्रभावती ने मुजफ्फरपुर के सबसे अधिक समस्याग्रस्त प्रखण्ड मुसहरी में अपनी क्रांति-यात्रा का कार्यारम्भ किया। और यह महान ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी कदम उठाकर सर्वोदय आंदोलन में लगे साथियों को नये कदम उठाने और अपने प्राणों की बाजी लगाकर मोर्चे पर जुट जाने का बिगुल बजा दिया।

जे० पी० का मुसहरी कथा-चरित्र इनके सर्वोदयी व्यक्तित्व की अग्नि-परीक्षा थी, जिसमें तपकर यह निकले थे। यह इनके सर्वोदयी जीवन का एक ऐसा चरम अध्याय था, जहां पहली बार अहिंसा को हिंसा के आमने-सामने खड़ा होना पड़ा था। जहां ग्राम-समुदाय के नैतिक और सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रश्न के आमने-सामने ध्वंस और अंधविश्वास आया था। लोक-चेतना को राज्य-शक्ति के सामने परीक्षा देनी पड़ी।

जे० पी० ने मुसहरी की अग्निपरीक्षा को देते समय 'आमने-सामने' नामक एक प्रतिवेदन प्रकाशित कर कहा था, 'यद्यपि सभी क्रांतियों में केन्द्रीय प्रश्न सत्ता का ही होता है और सभी क्रांतियों का आयोजन जनता के लिए सत्ता प्राप्त करने के नाम पर किया जाता है, तथापि सत्ता हमेशा ही क्रांति करने वालों में से ऐसे मुट्ठी-भर लोगों द्वारा हड़प ली जाती है, जो सबसे ज्यादा निर्मम होते हैं। ऐसा होना अनिवार्य ही है, क्योंकि (उनकी मान्यता के अनुसार) सत्ता बन्दूक की नली से निकलती है और बन्दूक सामान्य जनता के हाथ में नहीं, बल्कि हिंसा के उन संगठित तन्त्रों के हाथ में रहती है जो हर

सफल क्रांति में से 'क्रांतिकारी' सेना तथा उसकी सहायक जमातों के रूप में पैदा होते हैं। इन तन्त्रों पर जिनका नियन्त्रण होता है, उनके ही नियंत्रण में सत्ता रहती है। यही कारण है कि हिंसक क्रांति हमेशा किसी न किसी प्रकार की तानाशाही को जन्म देती है। और फिर यही कारण है कि क्रांति के बाद शासकों एवं शोषकों का एक नया विशेषाधिकारप्राप्त वर्ग कालान्तर में पैदा हो जाता है, जिसके अधीन बहुसंख्यक जनता फिर एक बार गुलाम हो जाती है।'

अक्तूबर, सन् इकहत्तर की बात है। अपराह्न का वक्त था। पटना के कदमकुआं क्षेत्र में जे० पी० के घर पर एक लंबे हट्टे-कट्टे व्यक्ति मिलने आए। अपना नाम बताया, रामसिंह और कहा कि वह चंबल घाटी में जंगल के ठेकेदार हैं और वहां से बागियों की ओर से संदेश लेकर आए हैं।

जे० पी० ने आंख उठाकर उनकी ओर देखा।

—आप हैं कौन ?

—जी, मैं जंगल का ठेकेदार हूं।

—तो ?

—डाकू लोग आपके सामने आत्मसमर्पण करना चाहते हैं।

जे० पी० बोले—तो आप विनोबा के पास क्यों नहीं जाते ? मैं इस काम में नहीं पड़ना चाहता। जाइए।

जे० पी० यह कहकर उठ पड़े। वह व्यक्ति सामने खड़ा हो गया। रास्ता रोककर बोला—मेरी बात सुनिए बाबूजी ! इस सवाल को अगर आप हाथ में ले लें तो इस बार दस-बीस नहीं, सबके सब बागी आत्मसमर्पण कर देंगे और उस क्षेत्र में डाकू-समस्या का अंत हो जाएगा।

जे० पी० बोले—देखिए, मुझे आपकी बातों पर विश्वास नहीं हो रहा है। मैंने पहले से ही जितनी जिम्मेदारियां ले रखी थीं, उन्हींको छोड़ रहा हूं। कोई और जिम्मेदारी लेने को मैं तैयार नहीं हूं।

—पर बाबूजी···।

—आप विनोबा के पास जाइए, कह तो दिया।

रामसिंह ने कहा—जी, वह तो है। विनोबा ने भी कहा है, मैं आपसे मिलूं।

—क्या ?

—जी, यह सर्वोदय का ही काम है।

—जी नहीं। आइए।

—बाबूजी, मैं ही माधोसिंह हूं।

जिस नाटकीय अंदाज से माधोसिंह ने अपना असली रूप प्रकट किया, जे० पी० वास्तव में स्तम्भित रह गए।

जे० पी० के मुंह से निकला- —आपपर डेढ़ लाख रुपये का इनाम है, मेरे पास आने की जोखिम आपने उठाई कैसे ?

माधोसिंह ने उत्तर दिया—आपपर हम लोगों को पूरा विश्वास है, इसलिए आया।

जे० पी० ने एकदम एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का बोझ अपने ऊपर महसूस किया। आनाकानी करना असंभव हो गया। जे० पी० ने स्वीकृति दे दी और उसी क्षण मधोसिंह ने अपने को जे० पी० के सामने समर्पित कर दिया। जे० पी० ने उसे अपने ही पास टिका लिया। प्रभावती के सिवा किसी-को भी मालूम नहीं होने दिया कि रामसिंह कौन है।

—विनोबा तो संत हैं। सन् साठ में बिना शर्त आत्मसमर्पण कराने का भारी बोझ उन्होंने लिया था।

जे० पी० बोले—पर भाई, मैं तो विनोबा नहीं हूं। एक साधारण आदमी हूं। इसलिए आप मुझे यह बताइए, आपकी शर्त क्या है ?

माधोसिंह बोले— समर्पण करने वाले को चाहे जितनी सजा दी जाए, पर फांसी न हो, हम यही चाहते हैं।

—यह तो बहुत उचित शर्त है।

इसके बाद माधोसिंह के लिए गया जिले के अपने आश्रम में छिपाने की जे० पी० ने व्यवस्था की और केन्द्रीय गृहमंत्री तथा मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और राजस्थान के मुख्यमंत्रियों से पत्राचार और प्रत्यक्ष मिलकर चर्चाएं शुरू कीं। साथ ही विनोबा के साथ सन् साठ में काम करने वाले चम्बल घटी शांति समिति के मंत्री महावीर भाई और ग्वालियर के हेमदेव शर्मा को भी तार देकर बुलाया। इस तरह जे० पी० ने चंबल घाटी शांति मिशन गठित किया और महावीर तथा हेमदेव को काम सौंपकर कहा कि वे अपने सहयोगी चुन सकते हैं। मिशन ने चरणसिंह और पंडित लोकमन (भूतपूर्व कुख्यात डाकू लुक्का) का सहयोग प्राप्त किया।

लेकिन नवम्बर में जे० पी० अचानक बीमार हो गए। मुसहरी से लेकर

अब तक लगातार कठिन परिश्रम और मानसिक संताप इस बीमारी के असल कारण थे। शुरू में डाक्टरों ने इसे हलके किस्म का दिल का दौरा माना था, पर बाद में यह भ्रम जाता रहा। फिर भी पूरे विश्राम और इलाज की अनिवार्यता स्पष्ट थी। नवम्बर, दिसम्बर और जनवरी इन तीन महीने तक जे०पी० का विश्राम और इलाज चला। इस बीच शांति मिशन का काम भी चलता रहा। तेरह दिसम्बर को जे० पी० ने चम्बल घाटी के बागी भाइयों के नाम एक अपील जारी की। उस समय बंगला देश का मुक्ति-संग्राम पूरे जोर पर था और भारत अपने अस्तित्व की एक नाजुक लड़ाई लड़ रहा था। अपील में जे० पी० ने कहा था, 'आजकल हमारा देश नाजुक दौर से गुजर रहा है। संकट की इस घड़ी में जबकि सारा देश अपनी सुरक्षा और आत्मसम्मान के लिए प्रयत्नशील है, चम्बल घाटी के बागी भाइयों से मेरी अपील है कि वे भी अपना गलत रास्ता छोड़कर देश के साथ सहयोग करें।'''बागी भाइयों से मेरी अपील है कि वे अपनी गतिविधियां बंद कर दें और हिम्मत के साथ समाज के सामने आत्मसमर्पण करें।'

इस अपील की हजारों प्रतियां चम्बल घाटी में बंटवा दीं। माधोसिंह ने बागियों की तरफ से उत्तर देते हुए एक प्रश्न पूछा- 'हम हथियार डालने को तैयार हैं। क्या समाज हमें वापस स्वीकार करेगा ?' जनवरी-भर इस प्रश्न के उत्तर में सरकारी, अर्धसरकारी स्तर पर काम हुआ। फरवरी में इस काम को आगे बढ़ाने के लिए जे० पी० के अथक प्रयत्नों से मानसिंह के पुत्र तहसीलदारसिंह जेल से रिहा हुए और वे बारह साल पहले जेल में होने के कारण जो नहीं कर पाए थे, अब उन्होंने पूरी लगन से वही शुरू किया।

एक दिन आगरा से खबर मिली कि पचास बागी समर्पण के लिए तैयार हैं।

जे० पी० का स्वास्थ्य सुधर रहा था। तब तक बंगला देश की मुक्ति ने जे० पी० के जीवन का एक सपना पूरा कर दिया था और अब वह प्रसन्न मन बागियों की अत्यंत मानवीय समस्या से निपटने की तैयारी कर रहे थे।

फरवरी में जे० पी० दिल्ली आए, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज में जांच और इलाज करवाने। जब वे पालम पर उतरे तो अत्यधिक थके हुए लग रहे थे। लेकिन कुछ ही दिनों में उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। माधोसिंह इस बीच जे० पी० को 'पूज्य पिताजी' संबोधित कर खत लिखता

रहा। मार्च की पहली तारीख को वह महावीर और हेमदेव के साथ दिल्ली में जे० पी० से मिला।

हेलीकाप्टर से ग्यारह अप्रैल को सुबह सवा नौ बजे जे० पी० प्रभावती के साथ ग्वालियर पहुंचे। साढ़े तीन बजे जे० पी० सत्तर किलोमीटर की यात्रा पर पगारा कोठी के लिए रवाना हुए। जे० पी० के साथ पत्रकार, पुलिस अधिकारी, कार्यकर्त्ता और नागरिकों का एक पूरा काफिला था। सड़क के किनारों पर बसे गांव-कस्बों के लोग स्वागत के लिए सर्वत्र खड़े थे। सिर्फ मुरैना के औपचारिक स्वागत में जे० पी० थोड़ी देर रुके और चाय पी थी।

मुरैना से जौरा आश्रम तक चौदह मील के रास्ते पर भी स्वागत में लोग खड़े थे। जौरा आश्रम होकर पगारा कोठी जाने वाला रास्ता धूल-भरे खड्डों से पटा था।

मुजफ्फरपुर के मुसहरी-प्रखंड के ऐसे ही रास्ते पर जीप से यात्रा करते हुए अभी पांच माह पहले जे० पी० अचानक बीमार हुए थे। और ऐसी जोखिम उन्हें फिर उठाने देने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। अतः पगारा कोठी तक उन्हें नहर के रास्ते से ले जाया गया जो आश्रम वाले रास्ते से थोड़ा बेहतर था।

संध्या साढ़े पांच बजे जे० पी० पगारा कोठी पहुंचे। वहां एक मीटिंग हुई जिसमें समर्पण का कार्यक्रम तै करना था।

रात हो आई। अंधेरे में साथ के लोग भोजन के लिए नीचे धोरेरा जाने लगे, बागियों के साथ सबका सामूहिक भोजन था।

रात को बागियों के साथ जे० पी० की मीटिंग शुरू हुई। वहां बागियों का सरदार मोहरसिंह जे० पी० और प्रभावती के बिलकुल पास बैठा था। चारों तरफ स्टेनगन के साथ, कमर और सीने पर कारतूस की पट्टियां बांधे बागियों का झुंड चुपचाप बैठा था।

तेरह अप्रैल, सुबह का वक्त।

लगभग दिन के ग्यारह बजे बागियों के परिवारों की महिलाएं मिलने पहुंचीं। बाल-बच्चे साथ थे। अजब करुणा-भरा दृश्य था।

जे० पी० से नहीं रहा गया। कहने लगे, 'बहनो! आप देख रही हैं कि कैसी अद्भुत घटना घट रही है। वर्षों से बीहड़ों में घूमते आपके घर के लोग जिनके नाम से जनता में भय रहा और जिन्होंने तरह-तरह के काम किए, वे

आज सब अपने हथियारों के साथ अपनी मर्जी से, कोई दबाव नहीं, कोई जोर नहीं, यहां इकट्ठे हुए हैं और कल जौरा में जनता के सामने महात्मा गांधी के चित्र के सामने अस्त्र-समर्पण करेंगे और अपना नया जीवन प्रारम्भ करेंगे। परिवार है, मां, बहन, पत्नी, बच्चे, बच्चियां हैं, जो इस जीवन के साथी हैं। आपको इस बात की चिन्ता होगी, ये हमारे घर के लोग जो खुशी-खुशी अपने को पुलिस के हाथों में सौंप रहे हैं, हाजिर हो रहे हैं, उनका क्या होगा? आपका क्या होगा? आपके बच्चों का क्या होगा? यह आपके दिल में भय होगा। मैं आपसे बहुत विनयपूर्वक कहना चाहता हूं कि भय तो अपने हृदय से आप निकाल दीजिए। परमात्मा का, ईश्वर का भरोसा कीजिए। उसकी ही यह लीला है कि चम्बल घाटी के ये मशहूर बागी लोग, जिनके सिर पर हजारों और लाखों का इनाम सरकार की तरफ से घोषित हुआ, उनका ऐसा दिल बदला कि उन्होंने अपने जीवन को नई दिशा में इस तरह से फेर दिया। इस रास्ते पर चलने से किसीका बुरा नहीं होगा।'

चौदह अप्रैल, उन्नीस सौ बहत्तर को गांधी सेवाश्रम, जौरा में संध्या समय, एक सार्वजनिक सभा में मोहरसिंह, सरूपसिंह, पंचमसिंह, तिलकसिंह और नरेशसिंह के दलों के बयासी बागियों ने और सोलह अप्रैल को माधोसिंह, माखनसिंह, जगजीतसिंह, कल्याणसिंह, रूपसिंह, जियालाल, हरिविलास आदि के दलों के इक्यासी बागियों ने और फिर सत्रह अप्रैल को ग्वालियर में नाथूसिंह के गिरोह ने जे० पी० के सामने आत्मसमर्पण किया।

सर्वोदय की उसी पदयात्रा में उड़ती हुई धूल के भीतर से जे० पी० को अनुभूति हुई :

राजनीति नहीं लोकनीति।

राजनीति में प्रशासन मुख्य है, लोकनीति में अनुशासन मुख्य है।

राजनीति में सत्ता मुख्य है, लोकनीति में मुख्य है स्वतन्त्रता।

राजनीति में नियंत्रण मुख्य है, लोकनीति में संयम मुख्य है।

और तब धूल-कीचड़-भरे रास्तों और झाड़-जंगल के उस पार गंगा नदी का जल दिखाई पड़ने लगा—लोकतन्त्र की पद्धति लोकमूलक ही हो सकती है, जिसकी प्रक्रिया संचालित समाज की न होकर सहकारी समाज की होनी आवश्यक है। वरना 'लोक' का शोषण पूंजीपति द्वारा होगा और 'तन्त्र' का दमन नौकरशाही और सिपाही-शक्ति से।

और जे० पी० की वर्तमान जीवन-यात्रा शुरू होती है।

राजनीति से लोकनीति। सर्वोदय के संसार में प्रवेश करने से पूर्व जे० पी० ने पूना में तब इक्कीस दिनों का उपवास किया था। अब लोकनीति के संपूर्ण प्रयोग की नई यात्रा शुरू करने से पूर्व आत्मदर्शन अनिवार्य है। और इसकी शुरुआत कहां से की जाए?

अपने जन्मदिन से।

ग्यारह अक्तूबर, उन्नीस सौ इकहत्तर को अपने जीवन के उनहत्तर वर्ष पूरे करते हुए जे० पी० ने एक व्यक्तिगत पत्र का मसविदा तैयार किया। यह पत्र उन सभी संस्थाओं के नाम था, जिनके वह पदाधिकारी या सदस्य रहे हैं। इस पत्र में उन्होंने कहा कि अगले ग्यारह अक्तूबर, उन्नीस सौ बहत्तर से ग्यारह अक्तूबर, उन्नीस सौ तिहत्तर तक के लिए समस्त प्रकार के सार्वजनिक व सामाजिक कार्यों से अलग रहने का निर्णय लिया है।

और ठीक इसी आत्मदर्शन अवधि की वह घटना है—चम्बल के सवा चार सौ बागियों के आत्मसमर्पण की। यह घटना नहीं, यही आत्मदर्शन था। इसने भारत और विश्व को ही नहीं स्वयं जयप्रकाश को भी प्रभावित किया। प्रभाव की सीमा यह है कि जब कभी इसकी चर्चा किसी भी प्रसंग में जे० पी० को करनी पड़ी है, उन्होंने हमेशा यही कहा है कि उन्हें खुद समझ में नहीं आता कि इतनी बड़ी घटना घटी कैसे। जे० पी० ने इसे 'ईश्वरीय लीला' माना और स्वयं को 'निमित्त-मात्र'।

चम्बल के उस कार्य ने जे० पी० को आत्मदर्शन दिया।

और जे० पी० जैसे व्यक्ति के आत्मदर्शन की प्रक्रिया क्या होगी? क्या हो सकती है? इसका वह एक जीवंत उदाहरण है।

संगठन से असंगठन, बंधन से मुक्ति, परावलंबन से स्वावलंबन। इसीके बीच से सर्वोदय ने जे० पी० को वह शक्ति दी थी जिससे वह अपनी बीमारी के दौरान भी बिस्तरे से सहसा उठकर बंगला देश की आजादी के लिए विश्व जनमत तैयार करने की यात्रा पर निकल गए। चंबल के बागियों का यह निर्णय सुनकर कि 'अगर जयप्रकाश हमारे पास नहीं आए तो हम आत्मसमर्पण नहीं करेंगे या फिर जहां जयप्रकाश हैं वहां जाकर करेंगे' जे० पी० बीमारी के दौरान भी खतरा उठाकर चंबल घाटी की ओर चले गए।

कर्म के भीतर से आत्मदर्शन। यही है नई प्रक्रिया जे० पी० के दर्शन और

कर्म की। जे० पी० का वह आत्मदर्शन था कि वर्तमान राजनीति से जो लोग आशा रखते हैं, वे सूखी हड्डी चूस रहे हैं और अपने ही रक्त का आस्वादन कर तृप्त हो रहे हैं। यह राजनीति तो गिर रही है, और भी गिरेगी। छिन्न-भिन्न हो जाएगी। तब इसके मलबे के ऊपर एक नई राजनीति जन्मेगी, जो इससे सर्वथा भिन्न होगी। नाम भी उसका भिन्न होगा। वह लोकनीति होगी, राजनीति नहीं। उस राजनीति के बीज आज भारत की मिट्टी के घोर तप में लवलीन हैं। उन बीजों को पैदा किया था गांधी ने और भारत की धरती को अपनी पदयात्रा द्वारा बार-बार जोत करके उन्हें बोया है विनोबा ने। हजारों अज्ञात सेवकों की सेवा उनका सिंचन कर रही है।

सर्वोदय कार्यकर्ता उस यात्रा में जे० पी० को रोककर सवाल करते—हमारे ग्रामदान के काम का समाज पर प्रभाव क्यों नहीं पड़ता? नक्सलबाड़ी में एक छोटी-सी घटना घटती है तो पूरे देश में हलचल मच जाती है। किन्तु दूसरी तरफ इतने सारे ग्रामदान हुए, फिर भी सर्वोदय कार्यकर्ताओं को या जनता को ऐसी प्रतीति क्यों नहीं होती कि कोई बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है?

जे० पी० को उस यात्रा में पता लगता रहता था कि भूदान की जमीन बांटने में व्यापक भ्रष्टाचार हुआ है। उस समय लालबहादुर शास्त्री ने कहा था, 'मेरी जानकारी है, उससे साफ है कि जमीन बांटने में बहुत ज्यादा भ्रष्टाचार हुआ है। अगर आप लोग इसे नहीं सुधारते तो उससे पूरा सर्वोदय समाज बदनाम होता है।'

भ्रष्टाचार की बात केवल भूमि-वितरण प्रसंग तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि खादी में मिश्रण और बिहार अकाल के लिए जे० पी० ने अपना खून-पसीना एक करके देश-विदेश से जो धन-संग्रह किया था, अकालग्रस्त, भूखी जनता के उस ग्रास को भी किस तरह कार्यकर्ताओं ने बेरहमी के साथ अपने घर पहुंचाया, सच्चाई यहां तक आ पहुंची थी।

इकहत्तर और बहत्तर के चुनावों की जो बुराइयां भयावह रूप में उभरकर आईं, उनकी ओर इंगित करते हुए जे० पी० तेरह अगस्त बहत्तर के 'दिनमान' की बातचीत में कहते हैं, 'वे बुराइयां पहले भी रही हैं लेकिन सीमित रूप में—उनको देखते हुए लोकतंत्र की रक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है कि चुनाव की वर्तमान पद्धति में आमूल परिवर्तन किए जाएं।...हम तो संसदीय अथवा अन्य प्रकार के प्रचलित लोकतंत्रों से आगे आकर और दल-आधारित राजनीति के बदले लोकनीति का निर्माण करके एक निर्दलीय

लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते हैं, जिसको मैंने सामुदायिक लोकतंत्र (कम्यूनिटेरियन डेमोक्रेसी) की संज्ञा दी है।'

उसी बातचीत में जे० पी० आगे कहते हैं, 'केन्द्र में सत्ता का जिस प्रकार केन्द्रीकरण होता जा रहा है, वह अवश्य ही घोर चिंता का विषय है। सारी सत्ता सिर्फ केन्द्रीय शासन में इकट्ठी हो रही है, ऐसा भी नहीं है। वह तो एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित होती जा रही है। कांग्रेस दल, चुनावों की सफलता के बावजूद, एक खोखला संगठन बन गया है। कांग्रेस मुख्यमंत्रियों का आधार लोकतांत्रिक समर्थन न होकर प्रधानमंत्री की इच्छा-मात्र बन गया है। समाजवाद के नाम पर राज्यवाद बढ़ता जा रहा है, जिसके चलते आर्थिक सत्ता भी केन्द्रीय शासन में, और अंततोगत्वा प्रधानमंत्री के हाथों में केन्द्रित होती जा रही है। समाचारपत्रों का स्वातंत्र्य स्वामित्व के विकेन्द्रीकरण के बहाने, कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की तरह दिन पर दिन क्षीण होता जा रहा है। विद्या के संस्थानों के राज्य पर अवलंबित होने के कारण राष्ट्र का बौद्धिक जीवन भी अपनी स्वायत्तता खोता जा रहा है।'

यात्रा की इस मंज़िल पर आते-आते जे० पी० के मानस से राजनीति का वह रूप पूर्णतः विलुप्त हो जाता है जिसमें सत्ता का संघर्ष ही सरकार बनाने या चलाने का आधार बन जाए। इसलिए प्रचलित लोकतंत्री संस्थाओं में, राजनीतिक दलों की आपाधापी में, जिसके बिना पश्चिम में विकसित लोकतंत्री प्रणाली की कल्पना ही असंभव है, जे० पी० को अब कोई आस्था नहीं रह जाती। उनका यह विश्वास सुदृढ़ होने लगता है कि भारत में निर्दलीय पंचायत, दलविहीन राजनीति और निर्दलीय राष्ट्रीय सरकार ही लोक का कल्याण कर सकती है। अपने इसी आदर्श को साकार रूप देने के लिए जे०पी० ने इन्हीं दिनों निर्दलीय ग्राम पंचायतों द्वारा ग्रामदानी क्षेत्रों में उम्मीदवार खड़ा करने की योजना दी।

इस बीच जे० पी० के व्यक्तिगत जीवन का एक परम करुण अध्याय खुलता है।

जिन दिनों प्रभावती जे० पी० के साथ मुसहरी और चंबल की घाटी में कल्याण-कार्यरत थीं, उन दिनों वह चुपचाप अपनी एक भयंकर बीमारी का अपार कष्ट भोग रही थीं।

यह बीमारी और उसकी भयावह स्थिति उस समय प्रकट हुई जब

जे० पी० बहत्तर के अक्तूबर में मेडिकल कालेज, वाराणसी, में अपने हाथ का घाव (कारबंकल) का इलाज कराने आए। जे० पी० के घाव का आपरेशन हुआ, वह ठीक हो गए। पर तभी जब प्रभावती की जांच हुई तो पता चला कि उनके गर्भाशय में कैंसर है।

जे० पी० घबरा गए। प्रभा ने अब तक जे० पी० को कष्ट के बारे में इसलिए नहीं बताया था कि उन्हें अपार कष्ट होगा और उनके कार्यों में बाधा उपस्थित होगी।

सत्ताइस नवम्बर को जे० पी० प्रभा को लेकर विमान से बंबई आते हैं—टाटा अस्पताल में। अठाइस तारीख को डा० पेमास्टर ने जांच की। चार दिसंबर को गर्भाशय का सफलतापूर्वक आपरेशन हुआ। और स्वस्थ होकर प्रभा जे० पी० के साथ जनवरी, तिहत्तर के अंतिम सप्ताह में कलकत्ता आईं। कलकत्ते में अपने छोटे भाई शिवनाथप्रसाद के यहां आराम कर ही रही थीं कि उन्हें फिर से तकलीफ शुरू हुई। वे तेज़ी से कमज़ोर होने लगी थीं और उलटियां हो रही थीं। बंबई से वहां डा० पेमास्टर बुलाए गए।

तिहत्तर के फरवरी मास में जे० पी० उन्हें लेकर पटना आए। पर उनकी हालत गिरती जा रही थी। पटना से फिर बंबई टाटा अस्पताल। वहां के डाक्टरों ने जवाब दे दिया। जे० पी० फूट-फूटकर रोने लगे।

जे० पी० प्रभा को लेकर पटना की ओर रवाना हो गए। पर सोचा, दिल्ली में तमाम मित्रों ने प्रभा को आखिरी बार मिला दिया जाए।

तेइस मार्च, तिहत्तर की एक उदास शाम। इंडियन एक्सप्रेस के लॉन में दिल्ली के सारे पुराने इष्टमित्र मिलने आए थे।

मार्च के अंत में जे० पी० प्रभा को लेकर पटना आते हैं। अब केवल दिन गिनने थे। अपने भतीजे, परिवार के इकलौते बेटे अनिल, की शादी की तैयारी करवाने में दीदी लगी रहतीं। शरीर की पीड़ा जब असह्य हो जाती तो गोली खाकर थोड़ी देर लेट रहतीं।

वेदना असह्य हो जाने पर वे कराहने लगतीं। जे० पी० को इसका पता न चले, इसके लिए उन्होंने अपनी चौकी दूसरे कमरे में लगवा दी थी। वेदना बढ़ जाने पर जे० पी० के कमरे का दरवाज़ा बंद हो जाता, ताकि जे० पी० शांति से सो सकें। कभी कराहते समय वे आते दिखाई देते, तो तुरंत मुस्कराती हुई वे कुछ बोल देतीं। जिस दिन कदमकुआं के चरखा समिति वाले मकान

को छोड़कर शादी वाले गार्डन रोड के मकान में जाना था, उसी दिन की बात है।

सुबह से तबीयत कुछ अधिक खराब है। उनकी उपस्थिति में शादी संपन्न कराने के लिए जल्दी-जल्दी में तिलक की रस्म पूरी की जा रही है। जे० पी० उन्हींके पास बैठे हैं, बिगड़ती हुई हालत को देख रहे हैं। डाक्टर को फोन करने के लिए उठकर बगल वाले कमरे में चले जाते हैं और इधर कस्तूरबा ट्रस्ट की सेविका सरस्वती बहन की गोद में सिर रखकर दीदी आंखें खोलती हैं, उनके मुख से कुछ शब्द निकलते हैं, सरस्वती बहन सुनने की कोशिश करती हैं—'बापू···बा···'और दीदी सदा के लिए आंखें मूंद लेती हैं।

जे० पी० के जीवन की वह सबसे बड़ी करुण घटना थी। प्रभाविहीन जे० पी० का वह एकाकीपन उस क्षण और करुण हो गया, जब उन्होंने उस कमरे में से, जहां प्रभा का शव रखा हुआ था, सबको बाहर चले जाने को कहा।

चारों तरफ से कमरे को भीतर से बंद करके जे० पी० मांविहीन अनाथ शिशु की तरह फूट-फूटकर रोते रहे। फिर प्रभा की मुंदी हुई आंखों के भीतर न जाने क्या अपलक निहारने लगे। उस क्षण जैसे उन्हें सुनाई पड़ा :

छिति जल पावक गगन समीरा
पंच रचित अति अधम शरीरा
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा
जीव नित्य, केहि लगि तुम रोवा।

रामायण में बाली के शव के सामने जब पतिवियोग में तारा विलाप कर रही थी, तब राम ने उसे धीरज देते हुए कहा था—जिसके लिए तुम रो रही हो, वह तो तुम्हारे सामने सोया पड़ा है, फिर क्यों तुम रो रही हो ? जीव तो नित्य है।

जे० पी० ने अश्रुपूरित नयनों से प्रभा को प्रणाम किया। उनके ठंडे माथे पर अपना माथा झुकाकर जे० पी० ने अपने अंतरतम में दुहराया—प्रभा, अब तक जो कुछ तुम करती रहीं, पूजा-पाठ, उपवास, उसे अब मैं करता रहूंगा, तुम्हारे लिए, अपने लिए···

तब शक्तिरूपा प्रभा जे० पी० के अंतस् में अंतर्धान हो गईं।

उस क्षण से जे० पी० एलदम अकेले हो गए और उस शक्ति के साथ वह सबसे जुड़ गए।

इस सत्य की अनुभूति उसीको हो सकती है जिसने आठ अप्रैल, सन् चौहत्तर को जे०पी० को पटना में उस मौन जुलुस का नेतृत्व करते देखा हो। या फिर पांच जून को गांधी मैदान में उस सात लाख जनसमूह के सामने बोलते सुना हो।

'प्रभामय' जे० पी० का वह अपूर्व रूप क्या है, जो तब से आज तक, इस क्षण तक लोगों को विस्मय में डाले हुए है ? और प्रतिदिन, हर आने वाले दिन वह विस्मय बढ़ता ही चला जा रहा है ?

कोई कह रहा है – कहां थे जे० पी० अब तक ?

कोई कहता है- -जे० पी० लोकतंत्र के शत्रु हैं। दक्षिणपंथी, प्रतिक्रियावादी हैं···

जे० पी० यह हैं। जे० पी० वह हैं···

जे० पी०···जे० पी०···जे···

पिछले छब्बीस वर्षों में भारत ने गांधी को छोड़कर जीने की कोशिश की है। सर्वोदयी राममूर्ति ने कहा था—राजनीति ने गांधी की अहिंसा खत्म की और रचनात्मक कार्यक्रम ने गांधी का सत्य।

विनोबा ने गांधी को समय के इसी मलबे के नीचे से बाहर निकाला और और जे० पी० ने उसे अंक में भर लिया। भीतर बैठी हुई शक्ति (प्रभा) ने जैसे कहा—सुनो जे० पी०, बापू व्यक्ति से प्रभाव, कामना से प्रेरणा और स्वप्न से यथार्थ बन चुके हैं। अब अभाव खटकने का कोई कारण नहीं है।

बस, जयप्रकाश प्रभामय बन गए। एक चिराग, एक दीप जलने लगा मानवता के गंगाजल में। उन्होंने अब तक देखा था, अब अनुभूत कर लिया, गांधी अंतिम व्यक्ति के हाथों में है। आज का वही अंतिम व्यक्ति कल का प्रथम व्यक्ति बनने वाला है। भारत के विशिष्ट जन ने इतिहास का दिया हुआ अवसर खो दिया है। वे बीते हुए कल की वस्तु बन गए हैं। अब आने वाला कल सामान्य और अंतिम व्यक्तियों का है।

जे० पी० बुद्धि से वैज्ञानिक हैं, हृदय से इतिहासवेत्ता। उन्होंने समय के इस नूतन विज्ञान का रसायन पा लिया है और इन ऐतिहासिक क्षणों का संकेत और आश्वासन।

सर्वोदय ने इसका नक्शा तैयार किया। समय ने एक सूली खड़ी कर दी और जे० पी० उसके लिए जीने और मरने के लिए चल पड़े।

यही हैं जे० पी०।

सर्वोदय ने दिखाया, आज का समाज अंदर से उड़ रहा है। लेकिन उसके न उड़ने का भ्रम बना हुआ है। भ्रम को बनाए रखने का पूरा प्रयत्न व्यवस्था ने कर रखा है। इलेक्शन, विधान और लोकसभाएं, नौकरियां, व्यवसाय और शिक्षा उस प्रयत्न के मुख्य स्तम्भ हैं।

जे० पी० उस बुनियाद को ही हिला रहे हैं, जिसपर ये स्तंभ खड़े हैं।

जो भी हो, मन जनता के पास है। राज्य तो क्रांति नहीं करता। मन से राज्य के हटते ही शक्ति के नये स्रोत फूट पड़ेंगे···यही हैं सन चौहत्तर के जे० पी०।

फरवरी में जे० पी० दिल्ली आए। विरोधी दलों के अनेक नेता जब उनसे मिलने आए तो विरोध की राजनीति पर चर्चा करने को जे० पी० उत्साहित नहीं दिखे। गांधी शांति प्रतिष्ठान में बावजूद अपने बुरे स्वास्थ्य के वह लोगों से मिलते-जुलते रहे। दूसरे सभी विषयों पर बातचीत भी कर रहे थे, लेकिन विरोधियों की सच्ची और कारगर एकता की संभावना उन्हें इतनी कम दिखती थी कि उसके बारे में बात करना भी उन्हें निरर्थक लग रहा था।

जे० पी० का यह अनुभव अब पक्का हो गया था कि विरोधी अब पहले से ज्यादा विभाजित, निष्प्रभ और दिशाहीन हैं। लोगों का विश्वास वे खो चुके हैं और उनके पास ऐसा कोई मंच नहीं है जिसपर वे प्रतिष्ठित रूप से जनता के सामने आ सकें। विरोध की इस हालत को समझकर ही शायद बीजू पटनायक ने जयप्रकाश नारायण को आगे रखकर उनके पीछे विरोधियों को संगठित करने का वह प्रयास किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जे० पी० राज्यवाद और सत्तावाद की बढ़ती हुई ताकत और कारगर विरोध के निपट अभाव को प्रजातंत्र के स्वास्थ्य के लिए खतरा मानते हैं। यह भी सही है कि प्रजातंत्र के स्वास्थ्य के लिए वे अपनी पुण्याई को दांव पर लगाने के लिए तैयार हैं। इसमें भी कोई शंका नहीं कि आज सत्ता और राजनीति से अलग जे० पी० ही एक ऐसे नेता हैं जिनपर लोगों का विश्वास है। लेकिन क्या विरोधी दल इस स्थिति में हैं कि वे कारगर, अर्थवान और देशहितकारी विरोधी बन सकें?

जे० पी० की निराशा दुहरी है। एक तरफ वे कांग्रेस के तौर-तरीकों से निराश हैं और दूसरी तरफ विरोधियों की निपट असरहीनता से। उन्हें विश्वास नहीं है कि विरोधी अपने सैद्धान्तिक, वैयक्तिक और निरर्थक मतभेदों को त्यागकर एक हो सकेंगे। प्रजातंत्र का मतलब विरोधी पार्टियों के लिए

सिर्फ सत्ता में आने की सुविधा है। जयप्रकाश और उनकी पीढ़ी के लोगों तरह प्रजातांत्रिक जीवन-मूल्य अब विरोधी पार्टियों की आस्था के आधार हैं। अगर होते तो पार्टियों में इतनी फूट नहीं होती। इसकी संभावना दिखती कि ये पार्टियां एक संगठित मोर्चा बना सकेंगी।

विरोधियों की इस विफलता ने सरकार को तो निरंकुश कर ही दिया जनता के असंतोष के स्वस्थ प्रकटीकरण के रास्ते भी बंद कर दिए हैं। विरो उनके असंतोष का लाभ उठाने को तैयार हैं, लेकिन उसे कारगर तरीके से करवाने की मशीनरी उनके पास नहीं है। तो फिर आम आदमी क्या करे? 'गरीबी हटाओ' के नारे के बाद बढ़ती हुई गरीबी और चढ़ती हुई कीम के खिलाफ उसका विरोध कैसे प्रभावशाली हो और किस तरह वह सरक को अपनी मांगें मनवाने पर मजबूर करे? क्या जयप्रकाश नारायण ऐसा क गैर राजनीतिक जनमोर्चा नहीं बना सकते जो सरकार पर अंकुश रखने में स और असली विरोध की भूमिका निभा सके?

अप्रैल के मध्य में प्रभावती के स्वर्गवास के बाद जे० पी० अपने भावी काय क्रम के बारे में बताते हुए कहने लगे, 'मैं आगे के काम के बारे में सोचता तो प्रभावती के बिना सोचा नहीं जाता। वे आंसू कुछ दिल को हलका करते हैं। अगर ये सहारा न दें तो इतना बोझ कैसे वहन किया जा सकता है!'

जुलाई के आखिरी सप्ताह में जे० पी० बम्बई पहुंचे। ट्रस्टीशिप यानी मालिक और मजदूर संबंधों में परिवर्तन के विषय पर जे० पी० मजदूरों की सभाओं में भाग लेते रहे। कुल तीन बैठकें कर पाए थे कि वहीं बंबई में जे० पी० फिर बीमार पड़ गए और उन्हें हाथ का काम वहीं छोड़ देना पड़ा।

जुलाई-अगस्त महीने में जे० पी० बंबई रहे। दो सप्ताह अस्पताल में और तीन सप्ताह आराम लेने के लिए छोटे भाई राजा बाबू के साथ रहे।

अठाइस अगस्त को जे० पी० पटना लौटे। डाक्टरों ने सलाह दी कि अगले तीन माह तक शरीर पर बिलकुल ही जोर न दें।

डेढ़ साल पहले जिस चंबल घाटी में जे० पी० ने बागियों का समर्पण कराया था, अब उन्हींके लिए मुंगावली में खुली जेल का उद्घाटन करने चौदह नवम्बर की सुबह जे० पी० दिल्ली से बीना पहुंचे। आसपास के लोगों में दंड-शास्त्र के क्षेत्र में किए जा रहे इस अभिनव प्रयोग को लेकर कितना उत्साह था,

इसका पहला प्रदर्शन बीना स्टेशन पर ही हुआ। बहुत-से लोग हार-फूल लेकर जे० पी० का जयजयकार करते आए और देखते-देखते वे फूलों से लाद दिए गए। मुंगावली बीना कटनी लाइन पर बीना से अठारह किलोमीटर दूर है। मुंगावली जाने वाली रेल खड़ी थी और उसका प्रथम श्रेणी का एक डब्बा फूलों और पताकाओं सजा था। भीड़ जे० पी० को उस डब्बे तक ले गई और सांस की कमी से आजकल त्रस्त हो जाने वाले जे० पी० ने अंदर जाकर गहरी सांस ली। पुलिस के जवानों ने भीड़ को डब्बे से एक अपेक्षित दूरी तक खिसका दिया। सभी तरह के लोग उनसे मिलने आते गए। जे० पी० के लिए किए गए इंतज़ाम में आक्सीजन का एक सिलेण्डर भी था और डाक्टर भी। ठीक दस बजकर बीस मिनट पर रेलगाड़ी खिसकने लगी। लेकिन बीना स्टेशन से निकलने में उसे कोई दस मिनट लगे होंगे। महीनों के बाद यही गाड़ी समय पर चली थी और इस कारण रोज के अभ्यस्त यात्री लेट हो गए थे और बार-बार चैन खींची जा रही थी।

आधे घण्टे में गाड़ी मुंगावली पहुंच गई। आमतौर पर ऊंघने वाला स्टेशन सहसा जीवित हो गया था और ठसाठस भरा हुआ था। मुख्यमंत्री सेठी, जेल और विधि मंत्री कृष्णपालसिंह, बहुत-से प्रशासक और कोई दो हजार लोग जे० पी० का स्वागत करने के लिए इतने उत्साहित थे कि गाड़ी के रुकते ही अराजक भगदड़ मच गई और बाहर एक बैण्ड उन्मादी की तरह बजने लगा। मालाओं और फूलों की इतनी कमी पड़ गई कि लोगों ने डब्बे की सजावट तहस-नहस करके फूल नोचे और जे० पी० पर न्योछावर किए। लोग डब्बे पर चढ़ गए। नारों, जयजयकार और भीड़ की रेल-पेल इतनी अधिक बढ़ गई कि जे० पी० को शीघ्र ही वहां से निकाल ले जाने का आग्रह करना पड़ा। पुलिस, प्रशासकों और स्वयंसेवकों ने भीड़ को हटाया और जे० पी० को महावीरसिंह स्टेशन के बाहर निकाल लाए। एक एम्बेसेडर में बैठकर वे नज़दीक ही बने सर्किट हाउस के लिए रवाना हो गए। सेठी और कृष्णपालसिंह एक खुली जीप में बैठकर लोगों का अभिवादन स्वीकारते हुए जुलूस में निकले। नगरपालिका की ओर से पहला स्वागत-द्वार बना था और उसके बाद शहर और खुली जेल यानी नवजीवन शिविर तक कई स्वागत-द्वार खड़े किए गए थे। लेकिन जुलूस सर्किट हाउस पर ही समाप्त हो गया। सर्किट हाउस के अहाते में दाहिने हाथ पर शांति मिशन का शिविर था और बायें हाथ पर एक बड़ा-सा शामियाना खड़ा किया गया था, यह सोचकर कि जे० पी० शायद वहां बैठकर छोटी बैठकें

करना पसन्द करें। लेकिन जे० पी० का स्वास्थ्य आजकल ज़्यादा बोलचाल बर्दाश्त नहीं करता इसलिए जिन तीस घण्टे तक वे मुंगावली में रहे शामियाने में सिर्फ दर्शनार्थी और पुलिस वाले बैठते रहे।

आखिर यहां खुली जेल में डाकू आ रहे हैं। लेकिन आज इन्हीं लोगों ने बड़े-बड़े स्वागत-द्वार सजाए थे, कस्बे में बड़ी चहलपहल थी। आसपास के गांवों-शहरों ने मुंगावली की आबादी एक-चौथाई बढ़ा दी थी। वातावरण उत्सव के उत्साह से भरा था। मुंगावली जैसे कस्बे में जे० पी०, मुख्यमंत्री सेठी, उनके साथी और दूसरे 'बड़े-बड़े' लोगों का आगमन निश्चित ही एक सार्वजनिक उत्सव था। जीपें, मोटरें और बसें दौड़ रही थीं।

सर्किट हाउस से लगभग दो किलोमीटर दूर मिरकाबाद में बनी खुली जेल के अहाते में तीन बजे उद्घाटन कार्यक्रम शुरू हुआ। लगभग सात हजार लोग समारोह में आए थे। जबलपुर जेल का सजा-धजा चमकीला बैण्ड और खादी के धवल कपड़ों में बैठे सत्तर बागी आकर्षण के केन्द्र थे। इन भूतपूर्व बागियों के भजन से समारोह शुरू हुआ। मंच पर गांधी-विनोबा के दो बड़े चित्र थे। उनकी लाइन में जे० पी०, मुख्यमंत्री सेठी, उनकी पत्नी और मन्त्रीगण बैठे और मंच पर शांति मिशन के देवेन्द्र भाई, महावीर भाई, हेमदेव शर्मा, सुब्बाराव और पं० लोकमन, तहसीलदारसिंह, चरणसिंह आदि को आग्रहपूर्वक बैठाया गया। जेलमंत्री कृष्णपालसिंह ने खुली जेल खोलने के बारे में मध्यप्रदेश सरकार का दृष्टिकोण बताया और अन्य जानकारी दी। भूतपूर्व बागियों से उन्होंने कहा कि वे अपने व्यवहार से सिद्ध करें कि जे० पी० और सरकार ने उनमें जो विश्वास प्रकट किया है, वे उसके योग्य हैं। जे० पी० ने अपने भाषण में खुली जेल के प्रयोग का दर्शन बताया और समाज के जागरूक वर्गों में हुई प्रतिक्रियाओं का उत्तर दिया।

पन्द्रह नवम्बर को जे० पी० ग्यारह बजे खुली जेल देखने और बागियों से मिलने आए। जेलमंत्री कृष्णपालसिंह, पुलिस महानिरीक्षक (कारावास) नायडू, जेल-अधीक्षक इसरार अहमद ने उन्हें जेल दिखाई। जगह-जगह अलग चूल्हे देखकर जे० पी० ने बागियों को मज़ाक में समझाया कि अब चूल्हा एक ही होना चाहिए। माधोसिंह, मोहरसिंह आदि गांधी फिल्म समिति द्वारा बनाई जा रही फिल्म की शूटिंग के लिए अपने पुराने सूटों में थे। जे० पी० ने जेल के मैदान, अस्पताल आदि व्यवस्था देखी। फिर अधिकारियों से चर्चा की और बाहर के शामियाने में बागियों की बैठक में आए। सुब्बाराव और बागियों

की बैठक ने 'जय जगत पुकारे जा' गीत गाया और सारा दृश्य, समूचा वातावरण बिलकुल चौदह अप्रैल, सन् बहत्तर के पगारा जैसा हो गया। जे० पी० की स्मृतियां ताजी हो गईं। जब उनसे बोलने को कहा गया तो जे० पी० का कण्ठ भर गया और आंखों से आंसू बहने लगे।

सन् तिहत्तर बीत रहा था। फरवरी चौहत्तर में उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, नागालैंड, त्रिपुरा और पांडिचेरी आदि राज्यों में नई विधान सभाओं के चुनाव होने जा रहे थे।

कलकत्ता में उनतीस और तीस दिसम्बर तिहत्तर को हुई 'आल इंडिया रेडिकल ह्यूमनिस्ट एसोसिएशन' के सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में जे० पी० ने घोषणा की, 'दलीय प्रजातंत्र का अब हमें छब्बीस वर्षों का अनुभव हो चुका है। इस दौरान लगभग हर राजनीतिक दल को सत्ता में भागीदारी मिल चुकी है और सत्ता में आने के बाद इनके रंग-ढंग हम देख चुके हैं और हमें मालूम है कि लोगों के लिए इन दलों ने क्या किया है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अपने घोषणा-पत्रों से भिन्न इन पार्टियों का व्यवहार और काम-काज सांपनाथ के भाई नागनाथ जैसा रहा है, फिर चाहे वे सरकार में रही हों या उसके बाहर। लेकिन इसे एक बार छोड़ भी दें तो बुनियादी मुद्दा यह है कि पार्टी-प्रणाली पर आधारित और पार्टियों द्वारा संचालित दलीय प्रजातंत्र एक बहुत ही असन्तोषजनक और त्रुटिपूर्ण प्रजातांत्रिक प्रणाली है। आम तौर पर लोग राजनीतिक पार्टियों और प्रजातन्त्र के वर्तमान स्वरूप और तौर-तरीकों से ऊब गए हैं। वे वोट देकर इस प्रजातन्त्र में जैसे-तैसे नाममात्र का अपना रोल अदा करते हैं, क्योंकि उनके सामने कोई विकल्प नहीं है....।'

जनवरी चौहत्तर के प्रथम सप्ताह से ही जे० पी० ने अपना नया अभियान शुरू किया। वाराणसी में उन्होंने निर्दलीय छात्रों को संबोधित करते हुए कहा कि वे एकजुट होकर वर्तमान प्रजातांत्रिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं की रक्षा करें। छात्र और युवावर्ग गांधीजी के ग्रामराज के सपने या सामुदायिक स्वशासन के आधार पर लोक प्रजातन्त्र का विकल्प खड़ा करने में लगें जिसमें सरकार चलाने की प्रक्रियाओं में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी हो सके। ये सब क्रांतिकारी लेकिन रचनात्मक कार्य हैं और इनके लिए स्वाधीनतापूर्वक की गई अनुशासित तैयारी की जरूरत है। इनमें सीधी कार्यवाही भी जरूरी हो सकती है, लेकिन एक बेहतर और सम्पूर्ण प्रजातन्त्र के लिए की गई कार्यवाही का हिंसा से कोई संबंध नहीं हो सकता।

जे० पी० के इस आह्वान को गुजरात के छात्रों ने सुन लिया और गुजरात विधान सभा के विसर्जन के लिए वहां राज्यव्यापी आंदोलन छिड़ गया।

तीसरा खंड : आंदोलन

सन् चौहत्तर का फरवरी मास। पटना में बिहार राज्य छात्र नेता सम्मेलन का आयोजन हुआ। संयोजन पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ द्वारा किया गया। यह वही समय था जब गुजरात में वहां के छात्र विधान सभा के विघटन की मांग को लेकर यह आंदोलन चला रहे थे। उस सम्मेलन में पहली बार ऐसा हुआ कि छात्रों ने शिक्षा से सम्बन्धित बुनियादी सवालों को समाज के यथार्थ से जोड़कर उठाया। इसके पीछे दो-तीन प्रेरक घटनाएं थीं।

सन् तिहत्तर के अंत में पवनार स्थित विनोबाजी के आश्रम में जयप्रकाश ने देश के युवकों के नाम 'जनतन्त्र के लिए युवक' के नाम से एक अपील जारी करते हुए कहा था— जब कभी देश का उद्धार होगा या क्रांति होगी, तो इस क्रांति के अगुआ युवक और छात्र ही होंगे।

दूसरी घटना थी, पटना विश्वविद्यालय के सीनेट हॉल में बाइस जनवरी और पहली फरवरी, सन् चौहत्तर को पटना कालेज मैदान में जे० पी० द्वारा 'यूथ फॉर डेमोक्रेसी' के सन्दर्भ में दो महत्त्वपूर्ण भाषण देने की। इनका आयोजन पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ व तरुण शांति सेना के संयुक्त तत्त्वावधान हुआ था।

तीसरी घटना—उसी जनवरी के अंत में जयप्रकाश ने सहरसा के राघोपुर-प्रखंड में भाषण करते हुए कहा कि लगता है, आज हम एक दूसरे 'सन् बयालीस' के कगार पर खड़े हैं। एक दूसरी क्रांति होने जा रही है। शहरों में हिंसाकांड, विद्यार्थियों के उपद्रव और कहीं दूसरे प्रकार से जनता का असन्तोष तथा दुख प्रकट हो रहा है। देहातों में भी लोगों के दिलों में, मानस में परेशानी है। ये चिह्न हैं आने वाली क्रांति के।

इसी समय मुजफ्फरपुर में महाविद्यालयों के छात्र प्रतिनिधियों ने शहर में

बोरबाजारी, सरकारी धांधली और भ्रष्टाचार रोकने के लक्ष्य से 'छात्र उड़न दस्ते' का संगठन शुरू किया।

ये सब घटनाएं पटना के उस बिहार राज्य छात्र नेता सम्मेलन को जीवंत बनाने के लिए पर्याप्त थीं। शिक्षा में आमूल परिवर्तन, महंगाई, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी से सम्बन्धित कुल आठ मांगों को लेकर फरवरी महीने के उस सम्मेलन के भीतर से छात्र युवा आंदोलन की चेतना पैदा हुई। और उसीमें से जनमी बिहार राज्य छात्र संघर्ष समिति।

पर इसी परिवेश से उसीके समानान्तर एक साम्यवादी युवा संगठन 'बिहार राज्य छात्र नौजवान मोर्चा' निकला। इसने उन्हीं कार्यक्रमों और मांगों को, जिन्हें बिहार राज्य छात्र संघर्ष समिति ने पारित किया था, अपना लिया। इन कार्यक्रमों में ज्यादातर संख्या गैर छात्रों की थी। इसका फल यह हुआ कि अठारह मार्च के पूर्व ही प्रदेश में हिंसा और तनाव का वातावरण पैदा हो गया।

ये सब घटनाएं चल रही थीं और जे० पी० पटना में अस्वस्थ पड़े थे।

अठारह मार्च को बिहार के दूर-दूर से हजारों छात्र अपनी बारह मांगें लेकर विधान सभा पहुंचे थे और उधर पटना शहर में वह भयानक कांड हुआ। पुलिस, सेना, सुरक्षा दल, सब कुछ के बावजूद पूरे ढाई घंटे तक पटना जलता रहा और कोई पूछने वाला नहीं था। उस दिन जो कुछ हुआ उससे पूरे प्रदेश में एक आतंक की स्थिति का निर्माण हुआ। उसी शाम को संचालन समिति के कुछ लोग जे० पी० से मिले। पर जे० पी० के अनुसार, वे लोग इतने डरे हुए थे कि कुछ बता नहीं पा रहे थे।

संचालन समिति के लोगों की जे० पी० से अगली मुलाकात उन्नीस मार्च की सुबह हुई। पूरे पटना में कर्फ्यू लगा हुआ था। पूर शहर सेना के प्रशासन में था। यह सही है कि छात्र संघर्ष समिति ने जे० पी० से आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए जब आग्रह किया तो उन्होंने अपने को उस समय मार्गदर्शन देने तक ही सीमित रखा; पर आगे-पीछे अनेक ऐसी घटनाएं घटीं कि जिनके कारण वह बिहार छात्र आंदोलन से गहरे जुड़ गए।

जिस तरह अठारह मार्च को जो छात्र आंदोलन उठा वह थमने के लिए नहीं रुका, उसी तरह सरकार की बंदूकों का जो मुंह एक बार तब खुला तो फिर बंद नहीं हुआ। उन्नीस को जमुई-मुंगेर में, बीस को लखीसराय-मुंगेर में और बैरगिनियां-सीतामढ़ी में सरकार की गोलियां चलीं और कर्फ्यू लगते रहे।

बिहार आंदोलन का प्रारम्भ छात्रों ने किया। नेतृत्व दिया जयप्रकाश ने, और उसे जन-आंदोलन का रूप मिल गया। इसके लिए छात्रों ने उन्हें लोक-नायक की संज्ञा दी।

आठ और नौ अप्रैल, उन्नीस सौ चौहत्तर को पटना में जो कुछ हुआ वह भारत के इतिहास में हमेशा के लिए अंकित हो गया। आज़ादी के पहले गांधी ऐसे व्यक्ति थे जिनके दर्शन के लिए लाखों लोग पलकें बिछाए घण्टों खड़े रहते थे। गांधी जब निकलते थे तो लोगों का बांध टूट जाता था। गांधी जब बोलते थे तो लाखों की सभा मौन हो जाती थी। गांधी एक गैर राजनीतिक लोकनेता थे। आठ और नौ अप्रैल को पटना में बिहार की जनता ने गांधी को फिर से जीवित कर दिया। किसी और गैर राजनीतिक जननेता का आज़ादी के बाद इतना बड़ा सम्मान नहीं हुआ होगा जितना जयप्रकाश का हुआ।

दिन : आठ अप्रैल। समय : पौने चार बजे। जे० पी० अस्वस्थ हैं, पर उन्होंने जनता को वचन दिया है, उसे पूरा करना है। डाक्टरों का कहना था कि किसी भी कीमत पर आठ मिनट से ज्यादा जुलूस में मत रहिएगा, नहीं तो स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ेगा। कदमकुआं स्थित महिला चर्खा समिति की पहली मंजिल से दो व्यक्तियों ने कुर्सी पर बैठाकर जे० पी० को नीचे उतारा। दायें हाथ में छड़ी और बायें हाथ से एक साथी का सहारा लेकर जे० पी० बिहार रिलीफ कमेटी की 'लैण्ड रोवर' गाड़ी तक आए। सहारा देकर उन्हें बैठाया गया। चार बजते-बजते जे० पी० कदमकुआं स्थित कांग्रेस मैदान पर पहुंच गए। जे० पी० स्वयं आश्चर्यचकित थे। जुलूस में प्रतिज्ञा-पत्र भरकर भाग लेने वाले एक हज़ार लोगों के अतिरिक्त हज़ारों लोगों की अनुशासित भीड़ जमा थी। जैसे ही जे० पी० आए लोग उनके दर्शनों के लिए टूट पड़े। जैसे-तैसे जे० पी० को एक प्रतिमा के सामने खड़े एक हज़ार सत्याग्रहियों के सामने तक ले जाया जा सका। अनुग्रहनारायण बाबू के संरक्षण में जे० पी० ने अपने जीवन की शुरुआत की थी। अनुग्रह बाबू जब तक रहे जे० पी० के सब कुछ रहे। एक जीवन की शुरुआत जे० पी० ने अनुग्रह बाबू के जीवनकाल में की थी। आज एक दूसरी शुरुआत भी उनकी प्रतिमा के सामने से ही जे० पी० करना चाहते थे। कुमार प्रशांत ने जे० पी० के गले में शांति सैनिक का केसरिया स्कार्फ बांधा। जे० पी० ने जुलूस में भाग लेने के लिए बनाए गए प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने हस्ताक्षर कर दिए। धीरे-धीरे जुलूस रवाना हुआ।

पूरे दस किलोमीटर रास्ते पर लोग हज़ारों की तादाद में अपने प्यारे

जननेता को पलक-भर देखने की लालसा से सड़क के दोनों ओर मौन खड़े रहे। जहां से जे० पी० की गाड़ी गुजरती लोग मोटर की खिड़की के पास दर्शनों के लिए टूट पड़ते। दस-बारह साल के बच्चों से लेकर सत्तर-अस्सी साल के बूढ़ों तक। सब कुछ अभूतपूर्व था। लाखों का जुलूस था पर मौन था। जहां-जहां से जे० पी० गुज़रे लोगों ने तालियां बजाईं, एक भी नारा नहीं लगाया। उनके नेता जयप्रकाश ने उन्हें नारा लगाने को मना किया था। मूक दर्शक रोने लगे। एक-दो क्षण ऐसे भी आए जब जे० पी० ने भी अपनी आंखों से आसुओं को पोंछा।

डाक्टरों ने जे० पी० को जुलूस में केवल साठ मिनट रहने को कहा था और जे० पी० ने इसे माना भी था, पर अपने बिहार के लोगों के प्रेम के आगे जे० पी० का भी बस नहीं था। कांग्रेस मैदान से जुलूस चार बजे चला था, और पटना जंक्शन रोड, फ्रेजर रोड, गांधी मैदान, अशोक राजपथ, गोविन्द मित्रा रोड और नाला रोड होते हुए जब पुनः कांग्रेस मैदान आया तब घड़ी में साढ़े सात बजे थे और जे० पी० मौजूद थे।

पटना जंक्शन रोड से फ्रेजर रोड पर मुड़ते ही बायें हाथ पर जेल है। इस जेल में विद्यार्थी भी बंद हैं जो हाल ही के आंदोलन के दौरान पकड़े गए। पर उन्हें खबर है कि उनके नेता फ्रेजर रोड से गुज़रने वाले हैं। चार-छः कैदी छात्र ऊंची मुण्डेर पर खड़े थे और बाकी जेल के अंदर की दो मंज़िली इमारत में कांचलगी खिड़कियों के पीछे खड़े थे। जैसे ही जे० पी० की मोटर गुज़री उन्होंने हाथ जोड़कर ऊपर उठाए, आवाज़ नहीं लगाई, सब कुछ मौन। जब तक मोटर ने जेल की दीवार नहीं पार कर ली जे० पी० हाथ जोड़े उन कैदी छात्रों की तरफ ही देखते रहे। दोनों सिरों पर एक मौन, दोनों तरफ की आंखें नम। जब छात्रों का दिखना बंद हो गया तो जे० पी० ने चुपचाप अपनी आंखें पोंछ लीं।

सड़क के दोनों किनारों पर हज़ारों लोग और दोनों तरफ की इमारतों पर हज़ारों लोग। जे० पी० फूलों के वज़न से दबते जाते थे और लोग थे कि उन्हें मालाओं से लाद देना चाहते थे। ऊंची-ऊंची इमारतों से लोगों ने जे० पी० की मोटर पर और जुलूस के लोगों पर फूल बरसाए। जो लोग दूर से देख नहीं सकते थे वे दूरबीन से देखने की कोशिश कर रहे थे। रास्ते में जगह-जगह लोगों ने पानी पिलाने का इंतज़ाम कर रखा था। लोग दौड़-दौड़कर जुलूस में भाग लेने वालों को पानी पिलाते थे।

फ्रेजर रोड पर सड़क के दोनों ओर दो बड़ी इमारतें। दोनों पर चौथी मंज़िल तक दर्शनार्थियों के झुण्ड और हाथों में फूलों की टोकरियां। जे० पी० को देख पाने की असफल कोशिशें। मैंने जे० पी० से कहा कि लोग आपको देखना चाहते हैं, मोटर बंद है इसलिए वे देख नहीं पा रहे हैं। जे० पी० ने मोटर रुकवाई, दरवाज़ा खोला और छड़ी के सहारे बाहर आ गए। इमारतों पर जमा लोगों की ओर हाथ जोड़ते हुए कृतज्ञतापन किया, लोगों ने अपने सारे श्रद्धा-सुमन जे० पी० पर उडेल दिए।

गांधी मैदान के पास जब जुलूस पहुंचा तो जे० पी० ने गाड़ी रुकवाई। एक बार फिर उतरे। उतरकर कुछेक क्षण जुलूस को देखा कि कितना बड़ा है। फिर महिलाओं तक आए और छोटी बच्चियों से इशारे से पूछा कि पानी पिया कि नहीं। उन्होंने इशारे से ही उत्तर दिया कि पिया। फिर कुछ दूर चलकर जुलूस का निरीक्षण किया, कुछ साथियों का अभिवादन स्वीकार किया और फिर चुपचाप गाड़ी में आकर बैठ गए।

जे० पी० की गाड़ी के साथ चल रहे सी० आई० डी० के आदमी ने कहा कि पूरा पटना उमड़ पड़ा है जुलूस में। पूरा पटना मौजूद था, पर मौन था। कैमरे की क्लिक होने की ही आवाज़ केवल गूंजती थी। साढ़े तीन घंटे जुलूस चला, पूरे नगर से गुज़रा। जुलूस के इर्द-गिर्द सुरक्षा के नाम पर कोई पुलिस या सेना नहीं, पर गिनाने के लिए भी एक भी अप्रिय घटना पूरे पटना में आठ अप्रैल को नहीं हुई।

बिहार का आंदोलन एक निर्णायक काल से गुज़र रहा है। एक ओर उसका सौम्य नेतृत्व है, दूसरी ओर उसके उद्दण्ड विरोधी तत्त्व हैं। तीसरी ओर बिहार की अपनी राजनीतिक अवस्था है। तीनों को मिलाकर आंदोलन की अवस्था निर्णायक हो जाती है। मौन जुलूस का नेतृत्व लेते ही जे० पी० पर नैतिक क्रांति का नैतिक नेतृत्व लेने की ज़िम्मेदारी आ गई। यद्यपि वह हर निर्णय छात्रों द्वारा ही करवाने के लिए आग्रह करते हैं, फिर भी लोग उनकी ओर नेतृत्व के लिए देखते हैं। बिहार से बाहर अब पूरे भारत में तमाम लोगों ने इस बात से आश्वासन पाया है कि क्रांतिकारी जयप्रकाश एक क्रांति की अगुआई करने फिर आ गया है।

फिर भी जिनके हाथों में सत्ता है और जो जनता की नहीं केवल हुकूमत की भाषा समझने के आदी हो चुके हैं, उनका मन इस आंदोलन से इतना विचलित हो चुका है कि लोग संदेह करने लगे हैं कि वे इसे समझ भी पाएंगे या

नहीं। पर यह आंदोलन एक काम चौतरफा ढंग से कर रहा है। यह हर बने-बनाए निर्जीव संस्थान को तोड़ रहा है। इसको लेकर सर्वोदय स्वयं विभक्त हो रहा है। फिर कांग्रेस में दो वर्ग हो गए हैं और विरोधी दलों में से तो हर एक में सत्ता और जनता को लेकर विच्छेद की नौबत आ गई है।

वस्तुस्थितियों की इसी पृष्ठभूमि में इलाहाबाद में तरुण शांति सेना के संयोजन में इक्कीस से तेईस जून के युवा सम्मेलन ने बिहार के आंदोलन को ही क्रांति की कसौटी माना और विश्वास किया कि यह आखिरी लड़ाई है, जिसके सफल हो जाने पर सारे देश में संपूर्ण क्रांति का द्वार उन्मुख हो जाएगा और यदि यह आंदोलन विफल हुआ तो अंधकार के एक दीर्घव्यापी युग की शुरुआत होगी, जिसमें जनतंत्र का अवशेष भी समाप्त हो जाएगा। ठीक यही जे० पी० ने तेईस जून की शाम को पुरुषोत्तमदास टंडन पार्क में डा० रघुवंश की अध्यक्षता में वर्षा से भीगती सभा में स्वयं भीगते हुए कहा, 'मुझे तो काफी पहले से यह दिख रहा था कि देश के क्षितिज पर सन् बयालीस आ रहा है। एक क्रांतिकारी परिस्थिति बन रही है और अगर लोगों की निराशा और घुटन को रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं मिली तो इस परिस्थिति में से सिवाय तानाशाही के कुछ निकलेगा नहीं। मैं सब पार्टियों को जानता हूं। सबमें मेरे मित्र हैं। लेकिन ऐसी एक शक्ति नहीं है देश में जो खूनी क्रांति कर सके। छुटपुट हिंसा होगी सब तरफ और उससे अराजकता होगी और तानाशाही आएगी। इस निराशा, असन्तोष और घुटन में से युवकों ने एक रास्ता निकाला, इसमें से रचनात्मक मार्ग निकलेगा। इसमें से संपूर्ण क्रांति निकलेगी। लेकिन मंच से लंबी बातें करने से नहीं निकलेगी। इसीलिए मैं इन युवकों से कहता हूं, आओ निकलके। गांधीजी ने कहा था, असहयोग करो। मैं कहता हूं कि सिर्फ एक वर्ष दो। एक वर्ष के लिए जीवन नहीं दोगे तो कुछ नहीं होगा।'

पटना वापस पहुंचकर अठाईस जून को जे० पी० पटना सेण्ट्रल जेल में उन छात्रों को देखने गए जो बिहार विधान सभा विलयन आंदोलन के सिलसिले में बंदी थे।

उसी दिन जे० पी० ने तेरह सदस्यों की एक ऐसी कमेटी गठित की जो इलाहाबाद में अखिल भारतीय युवा सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्तावों को कार्यरूप देगी।

पहली जुलाई को जे० पी० ने रांची के छात्रों और मजदूरों की एक विशाल

सभा में कहा कि बिहार आंदोलन का पहला, संगठनात्मक चरण अपने लक्ष्य को जल्द प्राप्त होने वाला है। तब यह आंदोलन पूरे बिहार में ग्राम पंचायत स्तर तक जन-संघर्ष समितियों के रूप में पहुंच जाएगा।

पश्चिम बंगाल नागरिक समिति के आमंत्रण पर पांच जुलाई को जे० पी० पटना से ट्रेन द्वारा तीन दिनों के लिए कलकत्ता पहुंचे। इससे पहले कलकत्ता की कम्यूनिस्ट पार्टी ने जे० पी० के कलकत्ता-आगमन के विरोध में विशेष कार्यवाही की धमकी दी थी। पर हावड़ा स्टेशन पर कुल दस-ग्यारह व्यक्तियों के जे० पी०-विरोधी नारे हज़ारों की संख्या में स्वागत के लिए आई हुई जनता की जयजयकार में सहज ही खो गए।

सी० पी० एम० के संयोजन में बंगाल के कुल नौ विरोधी दलों के नेताओं से विचार-विनिमय करते हुए जे० पी० ने भूख, महंगाई और भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने के लिए बिहार की ही तरह जन-आंदोलन छेड़ने की सलाह दी।

छः जुलाई को कलकत्ता की आम सभा में पूरे सौ मिनट के अपने गंभीर भाषण में जे० पी० ने कहा कि अगर वर्तमान व्यवस्था शीघ्र नहीं बदलती और भूखी, दुःखी और शोषित जनता की सारी आशाएं इस तरह टूटती चली जाती हैं तो आगे एक भयानक अंधकार है। इसके लिए जनतंत्र के ढांचे में ही आमूल परिवर्तन का काम अविलंब पूरा हो, यही है आंदोलन का पहला बुनियादी चरण।

कलकत्ता से हवाई जहाज़ द्वारा जे० पी० आठ जुलाई को नागपुर पहुंचे। वर्धा में होने वाले अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ के त्रिदिवसीय सम्मेलन में उन्हें विशेष रूप से भाग लेना था।

नागपुर पहुंचते ही राष्ट्रीय विद्यार्थी यूनियन और महाराष्ट्र युवा कांग्रेस के करीब पांच सौ छात्रों ने जे० पी० के विरोध में काले झंडों के साथ प्रदर्शन किए और नारे लगाए- -'जे० पी० वापस जाओ!'

पर उसी दिन नागपुर में छात्र जागृति की ओर से आयोजित विशाल आम सभा में जे० पी० ने कहा कि यह आंदोलन जल्दी ही पूरे भारतवर्ष-भर में फैलने को है और इसके नेतृत्व का भार युवकों को ही संभालना है।

जे० पी० और विनोबा की यह भेंट समाजवादी जयप्रकाश और सर्वोदयी जयप्रकाश और जे० पी० तथा विनोबा के बीच संपूर्ण साक्षात्कार की घटना थी।

जैसे-जैसे जे० पी० का वर्तमान जननायक रूप गुजरात, बिहार जन-आंदोलन के भीतर से उभरता गया, वैसे-वैसे वर्तमान सत्ता और व्यवस्था ने उसे तोड़ने और खंडित करने के लिए अन्य सारे प्रयत्नों के साथ सबसे बड़ा प्रयत्न यह किया कि जे० पी० और विनोबा के बीच अंतर पैदा हो।

जे० पी० विनोबा को समझते हैं।

पर अभी साक्षात्कार होना बाकी था।

महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष थे। उनके मनुष्य में तरह-तरह के तत्त्व थे। सबका अद्‌भुत समन्वय उस गांधी ने अपने महात्मा-व्यक्तित्व में कर रखा था।

गांधी के एक संत पक्ष के सच्चे उत्तराधिकारी विनोबा थे। गांधी की मृत्यु के बाद गांधी के स्वतंत्र देश में गुलामी का जो अंधकार छाने लगा, उसमें अगर कहीं कोई टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखा, तो वह इसी संत विनोबा का ही था। इसी प्रकाश के सहारे वे सारे निराश-हताश गांधीवादी विनोबा की शरण में आए।

मूल्यहीन राजनीति के उस निविड़ अंधकार में, भीतर से कहीं घायल जे० पी० इसी टिमटिमाते प्रकाश की ओर दौड़े थे। अब गांधी के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से उन्हींके संत प्रतीक विनोबा और गांधी के ग्राम-स्वराज्य आंदोलन के प्रतीक ग्रामदान के लिए जे० पी० ने बोधगया में अपना जीवन-दान दिया था।

जे० पी० ने तब गांधी-विहीन भारत में विनोबा को ही एक ऐसा नेता माना था जो दूरदर्शी हैं और जिनमें तीव्रता है कि तूफान की गति से काम होना चाहिए। ग्रामदान के प्रसंग में करोड़ों एकड़ जमीन का दान और एक वर्ष में ग्राम-स्वराज्य की बात सुनकर जे० पी० ने विनोबा को स्वप्नद्रष्टा और ऋषि कहा था।

जे० पी० ने विनोबा में तब क्रांति और शांति का अपूर्व संयोग देखा था। यहां तक कहा था, 'गांधीजी के जाने के बाद इस भयाक्रांत विश्व में आशा का ज्वार नहीं तो कम से कम एक लहर भी यदि किसी एक नाम ने पैदा की है, तो वह विनोबा के ही नाम ने।'

जे० पी० को पता था, विनोबा सन्त-परम्परा के पुरुष हैं। सन्त सामाजिक क्रांति के दर्शन में विश्वास नहीं करता, वह आत्मज्ञान के दर्शन में अपना लक्ष्य मानता है। वह सामाजिक क्रांति चाहता है, पर उसके लिए वह कभी सत्ता या

व्यवस्था से संघर्ष नहीं करता। बुनियादी तौर पर संत व्यवस्था को मानकर चलता है। तभी वह ऐसे सारे कर्मों और निर्णयों से अपने को दूर रखता है जिनके कारण व्यवस्था से उसका सीधा संघर्ष हो।

इस सच्चाई को जे० पी० ने सन्त विनोबा के चरित्र में ग्रामदान के उन दिनों में तभी देख लिया था जब ग्रामदान एक जन-आंदोलन का व्यापक रूप लेने लगा था और तब ऐसा लगने लगा था कि जनशक्ति और व्यवस्था के बीच कोई व्यापक संघर्ष निकट भविष्य में अब अनिवार्य है, तभी विनोबा ने ग्रामदान आंदोलन के विसर्जन की बात शुरू कर दी।

भूमि-वितरण के यथार्थ जन-आंदोलन को जमीन से उठाकर आकाश में ले जाने लगे –प्रांतदान, देशदान, जै जगत् और अन्त में उपवासदान।

वास्तव में यह सब सन्त-चरित्र की परम्परा में था। पर चूंकि सन् चौहत्तर का बिहार जन-आंदोलन ग्रामदान चरण से जन्म लेकर आज राष्ट्रव्यापी आंदोलन की प्रेरक शक्ति बनने को था, इसलिए विनोबा के चरित्र से जे० पी० के चरित्र का अब साक्षात्कार अनिवार्य था।

बिहार के आंदोलन में सर्वोदय कार्यकर्ताओं की भूमिका पर चले तीन दिनों के वाद-विवाद के बाद बारह जुलाई को पवनार में एकत्रित सर्वोदय कार्यकर्ताओं को विनोबा ने अंततः आज्ञा दे दी कि सर्वसेवा संघ के जो सदस्य बिहार आंदोलन में जाना चाहें, जाएं, पर सत्य, अहिंसा और संयम की शर्त मानें।

जुलाई और इसके बाद प्रारम्भ होने वाले आंदोलन के नये चरण के लिए जे० पी० ने संघर्षात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत कहा कि जन-जीवन से सम्बद्ध पूर्ति राशन और अदालत छोड़कर अन्य सभी सरकारी दफ्तर ठप कर दिए जाएं। शराब की देशी और विदेशी दूकानों पर पिकेटिंग की जाए और प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में कम से कम पन्द्रह जन-सभाओं के माध्यम से विधायकों के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पारित कर राज्यपाल और संघर्ष कार्यालय को तार द्वारा सूचना भेजी जाए।

संगठनात्मक कार्यक्रमों के अंतर्गत जे० पी० ने पंचायत-प्रखंड और जिला-स्तर की तदर्थ जन-संघर्ष समितियों के गठन के कार्य शुरू किए। ध्यान रखा गया कि संयोजक निर्दलीय हों और सक्रिय व्यक्ति ही सदस्य हों। इसी प्रकार प्रत्येक हाई स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय स्तर की छात्र संघर्ष समितियों के भी गठन कार्य शुरू हुए। चुनाव क्षेत्र-स्तर की समितियों के गठन हुए। छात्र

एक साल का समय अपनी इस क्रांति को दें, यह भी स्वीकृत हुआ।

इसके बाद बिहार आंदोलन का जन-व्यापी स्वरूप और सरकार द्वारा उसके दमन का अध्याय शुरू होता है।

४ नवम्बर, १९७४ का घेराव

बिहार आंदोलन के इतिहास में चार नवम्बर, सन् चौहत्तर का दिन तब तक याद किया जाएगा जब तक लोगों को जनतन्त्र में विश्वास है। विरोध के दर्शन और सत्याग्रह में आस्था है।

आंदोलन के आह्वान पर ४ नवंबर को घेराव के लिए पहुंचे आंदोलनकारियों ने एक बार फिर यह तथ्य सामने रखा कि दृढ़ संकल्प अपराजेय होता है। व्यवस्था और शासन के तमाम अवरोधों की आंख में धूल झोंकने के लिए लोगों ने जो-जो तरीके अपनाए, वे सब उनकी दृढ़ संकल्पशक्ति का ही परिचय देते हैं। बिहार प्रदेश के सभी गांवों, प्रखंडों, शहरों से लाखों-लाख लोग चले पटना के लिए; पहुंचने वालों की संख्या लगभग ६०-६५ हज़ार थी। बाकी कहां रह गए ? लोगों के मुंह से सुनिए :

•बिहारशरीफ से २ नवंबर से ही लोग छिटपुट पटना पहुंचने लगे थे। लोगों ने बताया कि बिहारशरीफ और पटना के बीच लगभग ११ 'चेक पोस्ट' बनाए गए थे जहां पर पुलिस अधिकारी कड़ी जांच करते थे। बसों, ट्रकों टैक्सियों और निजी गाड़ियों को भी रोका जाता था और सभीसे उनका गंतव्य पूछा जाता था। युवकों पर विशेष रोक थी। इस परिस्थिति को देखते हुए लोगों ने अपनी रणनीति बनाई। लोग अपनी सवारियों से चेक पोस्ट के एक-आध मील पहले उतरकर छिटपुट रूप में आगे बढ़ते थे और जब सवारी चेक पोस्ट से जांच के बाद एकाध मील बढ़ जाती थी तो फिर सवार हो जाते थे। एक नवयुवक ने, जो टैक्सी में आ रहा था, चेक पोस्ट पर इसी उद्देश्य से लाई साड़ी वगैरह अधिकारियों को दिखाई और कहा कि मेरी पत्नी पटना अस्पताल में भर्ती है और मैं वहीं जा रहा हूं। इसपर एक अधिकारी ने कहा, 'तो क्या आप दो दिन बाद नहीं जा सकते ?' इसपर उस युवक ने उत्तर दिया कि अगर आपकी पत्नी बीमार होती तो आप शायद यहां पर ड्यूटी भी नहीं देने आते। उपस्थित लोग हंस पड़े और युवक आगे बढ़ गया।

•पटना के पास के इलाकों के लोगों ने एक अलग तरीका अपनाया। वे लोग चार-पांच की छोटी-छोटी टोलियों में बंट गए और प्रत्येक टोली ने एक-एक अर्थी ले ली मानो वे मुर्दा ले जा रहे हों। धीरे-धीरे जब काफी टोलियां निकल गईं तब अधिकारियों को संदेह हुआ और उन्होंने जांच शुरू की। फिर तो लोगों की पिटाई हुई, गिरफ्तारी हुई।

जांच अधिकारी इतने तत्पर थे पटना जाने वाले लोगों की जांच में कि उन लोगों ने गंगा के उस पार नाव पर एक मुर्दे की जांच तक कर डाली। अधिकारियों ने लाश ढोने वालों की भी जांच की तथा यहां तक कहा कि लाश जलाने के लिए पांच व्यक्ति क्यों ?

•प्रशासन की ओर से पटना की घेराबंदी के क्रम में सभी निजी नावों को बंद करवा दिया गया था। फिर भी कितने लोगों ने रातों-रात सुनसान किनारों से अपनी नावें खोलीं और गंगा पार कर पटना पहुंचे। दिघवारा, छपरा, सोनपुर, हाजीपुर आदि इलाके के लोग इसी प्रकार आए। एक युवक ने बताया कि कुछ व्यापारियों ने पुलिस को पैसा दिया था और वे रात में नाव निकालते थे अपने माल ढोने के लिए। लोगों ने उस तरह की नावों में भी व्यापारी का वेश बनाकर गंगा पार की। कुछ ने कड़ी जांच के बावजूद स्टीमर से टिकट लेकर तथा बहाना बनाकर पार किया। इसी प्रकार जब कुछ लोग महेन्द्रू घाट पर पहुंचे तो पुलिस वालों ने रोकना चाहा, लेकिन एक अधिकारी ने कहा कि भाई, इन लोगों को जाने दो। कांग्रेस और सी० पी० आई० वाले अगर सीने पर बैज लगाकर शान से बिना टिकट पार कर जाते हैं तो ये लोग तो टिकट लेकर जा रहे हैं और जयप्रकाश के सिपाही हैं।

•कटिहार, समस्तीपुर, सहरसा, पूर्णिया आदि इलाके के लोगों की विभिन्न स्टेशनों पर जांच की गई। बरौनी में बहुत ज्यादा कड़ी जांच होती थी। यहां पर कई लोगों को गिरफ्तार किया गया। पूर्णिया के लोगों ने बताया कि बरौनी में पटना आने वाले लोगों के सामानों को पुलिस ने छीन लिया तथा उनके साथ दुर्व्यवहार किया। रोपड़ा से चले लोग जब बरौनी स्टेशन के पहले ही रेल से उतरने की कोशिश कर रहे थे, एक युवक का सर पानी सप्लाई करने वाले पाइप से लगकर फट गया। उसे लोगों ने पटना अस्पताल में लाकर भर्ती कराया। बरौनी में ही गिरफ्तारी के दौरान दो-दो व्यक्तियों को एक हथकड़ी से बांधा गया।

•संथाल परगना, भागलपुर आदि जगहों के लोगों ने भागलपुर से ट्रेन पकड़ने का निश्चय किया था, क्योंकि जसीडीह में पुलिस का भारी जमाव था। संथाल परगना के लोग पिरपैंती के रास्ते से भागलपुर किसी प्रकार पहुंचे।

२ तारीख तक भागलपुर के पास के एक छोटे स्टेशन पर काफी लोग जमा थे पटना जाने को। किसीने बीच में नारे लगाना शुरू कर दिया। इसपर पुलिस ने अधिकांश लोगों को गिरफ्तार कर लिया। फिर भी काफी लोग किसी प्रकार ट्रेन पकड़ने में सफल हुए और पटना पहुंचे। टिकट लेने के बावजूद लोगों की गिरफ्तारी हुई।

•आरा से आनेवाले एक युवक ने बताया कि जब वह रात में पटना पहुंचने के लिए आरा स्टेशन पर पहुंचा तो काफी लोग जमा थे और जांच हो रही थी। जांच से बचने के लिए वह एक भिखारी के फटे-चिटे कम्बल में प्लेटफार्म पर उसके साथ ही लेट गया और ट्रेन जब चलने ही वाली तो थी दौड़कर ट्रेन पर चढ़ गया। आरा, दानापुर, खगौल, गया, बाढ़, मोकामा आदि क्षेत्रों से (ये पटना के आसपास के क्षेत्र हैं) हजारों लोग विभिन्न रास्तों से छुपकर पैदल पटना पहुंचे।

जयप्रकाशजी ने एक सभा में नागरिकों को संबोधित करते हुए कहा था कि आपकी परीक्षा है कि आप पटना पहुंचने के कितने रास्ते जानते हैं। लोगों ने काफी संख्या में पटना पहुंचकर जयप्रकाशजी को भी कुछ नये रास्ते दिखा दिए।

४ नवंबर के काफी पहले से ही सरकार पटना की सड़कों पर अपने इरादों की घोषणा करने लगी थी। प्रांत-भर से इकट्ठे होने वाले साथियों को ४ नवंबर को १० बजे तक गांधी मैदान में इकट्ठा होने का निर्देश दिया गया था, इसलिए गांधी मैदान पहुंचने वाली सभी सड़कों की घेराबंदी की गई थी। बांस-बल्लम से रास्ते बंद कर दिए गए थे। खुलेआम शहर के बीच इस प्रकार की नाकेबंदी स्वतंत्र भारत में अपने ढंग की अकेली घटना होगी। गंगा के उस पार से आने वालों के स्वागत के लिए पुलिस की मोटर-लांच चौकसी कर रही थी। तीन नवंबर को समाचारपत्रों ने बताया कि एक लाख से अधिक लोग गंगा के किनारों पर, और इतने ही लोग पटना शहर के चारों ओर रोक रखे गए हैं। नाके-बंदी पटना शहर में प्रवेश करने वाले मार्गों पर भी थी।

३ नवंबर तक तो इतने आंदोलनकारी पटना शहर में प्रवेश पा गए थे कि बाज़ार पर भी उसका असर दिखाई देता था। आंदोलनकारियों को ठहराने की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी, फिर भी अलग-अलग मुहल्लों में कुछ शामियाने खड़े किए गए थे। छात्र संघर्ष समिति के प्रधान कार्यालय के पास क्रांतिकारी मैदान में भी एक बड़ा शामियाना खड़ा हुआ जिसे उसी दिन शाम

को पुलिस ने गिरा दिया। आंदोलनकारियों को गिरफ्तार कर लिया और मैदान पर कब्जा कर लिया। शहर में दूसरी जगहों पर टिके सत्याग्रहियों की भी गिरफ्तारी हुई। तीन तारीख की रात तक ४० से ५० हज़ार सत्याग्रही पटना पहुंच चुके थे।

बाहर से आने वाले साथी अपना भोजन साथ लाएं, यह घोषणा काफी पहले कर दी गई थी और लोग खाने का सामान साथ लेकर आए भी थे। पर, पटना की जनता ने खाने के पैकटों की व्यवस्था की थी और तीन तारीख की दोपहर से जो खाने के पैकेट संघर्ष कार्यालय पहुंचने शुरू हुए तो ५ तारीख की रात तक पहुंचते रहे। हजारों लोगों को पैकेट दिए गए। कई जगहों से दूकानदारों ने भी नाश्ते के सामान आदि दिए।

तीन की रात को पुलिस ने कई जगह छापा मारा और कई सक्रिय साथियों को गिरफ्तार भी कर लिया। आंदोलनकारी और पुलिस दोनों एक-दूसरे को सूंघते हुए घूम रहे थे।

तीन तारीख को दिन-भर पटना सिटी, दानापुर आदि घूमकर थके जयप्रकाशजी की तबियत रात में अचानक बिगड़ी। पर, चार की सुबह वे निश्चित समय तैयार होकर अपनी गाड़ी पर बैठे।

इससे पहले शहर से तरह-तरह की खबरें आ रही थीं। गांधी मैदान के निकट गांधी संग्रहालय में १५-२० हज़ार सत्याग्रही रात-भर रुके थे। पुलिस ने उन्हें वहीं बंद कर दिया। गेट के भीतर जनता और बाहर दरबानी करती सी० आर० पी० ! सड़कों पर हुई घेराबंदी के पास भी लाठीधारी सी० आर० पी० मौजूद थी। गांधी मैदान किसीको नहीं जाने दिया जा रहा था। सड़कों पर खड़े लोगों को पुलिस खदेड़कर भगा रही थी। संघर्ष कार्यालय के दफ्तर पर सुबह-सुबह पुलिस ने छापा मारा।

चार की पौ फटते ही पूरा पटना शहर एक रणस्थल में बदल दिया गया था। लड़ाई थी जनता और जनता के नाम पर अपना पेट भर रहे प्रतिनिधियों के बीच। शहर का कोई चौराहा ऐसा नहीं था जहां मुंह पर लोहे की जाली, सर पर लोहे का टोप, बूट से लैस राइफलधारी जवानों की टुकड़ी खड़ी नहीं हो।

९ बजे महिला चर्खा समिति से जयप्रकाश नारायण छोटी-सी भीड़ के साथ गांधी मैदान के लिए रवाना हुए। वे एक खुली जीप पर बैठे थे, जिसपर महिला चर्खा समिति की कई छात्राएं, संसद् सदस्य श्यामनन्दन मिश्र आदि भी सवार

थे। जयप्रकाशजी की गाड़ी ज्योंही शहर में निकली, शहर में छाई स्तब्धता टूट गई। गलियों से निकलकर लड़के जुलूस में मिलने लगे और देखते-देखते गांधी मैदान के पास की पहली घेराबंदी आ गई।

जुलूस घेराबंदी के पास रुका। सामने सी० आर० पी० के लाठीधारी जवान खड़े थे। जयप्रकाशजी ने लड़कों से शांत रहने को कहा। वे गाड़ी से उतरकर घेराबंदी के पास पहुंचे। पता चला कि उनकी गाड़ी के अतिरिक्त और किसीको आगे नहीं जाने देने का आदेश है। जयप्रकाशजी पैदल ही आगे बढ़े। जैसे ही जयप्रकाशजी आगे निकले पुलिस लाठी लेकर भीड़ पर टूट पड़ी। शांतिपूर्वक नारे लगाती भीड़ पर लाठीप्रहार से सब अचंभित रह गए। भगदड़ हुई। जयप्रकाशजी तेज़ी से पीछे लौटे। तब तक घेरा टूट चुका था। लाठी खाकर भी लोग घेरा पार कर चुके थे। जयप्रकाशजी पीछे लौटकर काफी दूर तक पैदल गए और रास्ते में खड़े सी० आर० पी० के जवानों को समझाते गए।

जुलूस फिर गांधी मैदान की ओर चला और अपनी ही बेवकूफी से अपनी रक्षापंक्ति को तोड़ चुकी पुलिस अगली मोर्चाबंदी के लिए बढ़ गई। पैदल जयप्रकाशजी गांधी मैदान के निकट, बस स्टैंड के सामने से मैदान में घुसे। मैदान के बीच भी कई सत्याग्रही रोककर रख रखे थे पुलिस ने। वे सब आकर इस टुकड़ी में मिल गए। मैदान पार करके सड़क पर पहुंचते-पहुंचते जुलूस फिर खासा बड़ा हो गया। सोचा था, जब तक जयप्रकाशजी सड़क पर पहुंचेंगे उनकी जीप वहां आ जाएगी, जिसे वे पहली घेराबंदी के पास ही छोड़कर बढ़ गए थे; पर सड़क पर पहुंचकर मालूम हुआ कि पुलिस ने गाड़ी जब्त कर ली है।

सामने स्टेट बैंक का छोटा दफ्तर था, जिसके अहाते में पेड़ थे। धूप से परेशान जयप्रकाशजी उस ऊंची चहारदीवारी को फांदकर अहाते में कूदे। जुलूस का जो हिस्सा गांधी मैदान में रह गया था, पुलिस ने फिर उसकी पिटाई की और अश्रुगैस के गोले छोड़े। दो गोले तो ठीक उस चहारदीवारी के पास गिरे जहां आंदोलनकारियों के साथ जयप्रकाशजी बैठे थे। धुआं फैला। जयप्रकाशजी ने आंख और नाक ढक ली।

दूर से अश्रुगैस फेंकने के धमाके आ रहे थे। गांधी संग्रहालय में बंद सत्याग्रहियों पर यह अश्रुगैस फेंकी जा रही थी ताकि वे बाहर न निकल सकें।

जयप्रकाशजी फिर चहारदीवारी फांदकर सड़क पर आए और फ्रेज़र रोड की तरफ बढ़े। सामने सी० आर० पी० के लाठीधारी जवान खड़े थे। जैसे ही टुकड़ी उनके पास पहुंची लाठी-प्रहार हुआ। लड़कों पर लाठियां पड़ी ही थीं कि जयप्रकाशजी तेज़ी से आगे बढ़कर लाठियों के बीच घुस गए। यह घटना क्या हुई कि लड़कों को जैसे बिजली-सी छू गई। लाठियां खाते हुए लड़के आगे बढ़ निकले। जयप्रकाशजी की उंगली छिल गई और खून बहने लगा। सड़क के किनारे के पेड़ की छाया में जुलूस रुका। सड़क पर तौलिया बिछाकर जयप्रकाशजी बैठे और अगल-बगल उनकी सेना। धूप और धक्कों के चिह्न सबके चेहरे पर थे। कुछ देर पुलिस ने जो जीप रोक ली थी वह आ गई। जयप्रकाशजी फिर जीप पर बैठे। न मालूम किस-किस रास्ते से लोग चले आ रहे थे और जुलूस में शामिल हुए जा रहे थे। यहां से जुलूस आगे बढ़ा तो ८-१० हज़ार लोग शामिल हुए जा रहे थे। नारों से सड़क गूंज रही थी—'तुम प्रतिनिधि नहीं रहे हमारे, कुर्सी-गद्दी छोड़ दो!'

पुलिस की बेरहम मार से प्रदर्शनकारियों में डर नहीं था। हर मुठभेड़ के बाद उनका उत्साह बढ़ता ही जाता था, और जयप्रकाशजी की अविचलित मुद्रा उन्हें निरंतर दृढ़ करती जाती थी। यह भी सच है कि जयप्रकाशजी की उपस्थिति में पुलिस ऐसा व्यवहार करेगी, इसकी आशा किसीको नहीं थी। पर इस व्यवहार ने आंदोलनकारियों के सामने यह तथ्य और स्पष्ट कर दिया कि सत्तालोलुपता विवेक और मनुष्यता पर ज़िंदा नहीं रहती है।

जुलूस आगे बढ़ता जा रहा था और सब बेचैन थे अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए। सड़क के किनारे, छतों पर, दफ्तरों की खिड़कियों पर दर्शक ही दर्शक थे। सब उत्साहित थे और मन ही मन जुलूस के साथ चलते हुए भी कुछ कमज़ोरियों, मजबूरियोंवश दूर खड़े थे।

डाक बंगला गोलंबर के पास से जुलूस बेली रोड की तरफ मुड़ा। स्टेशन से आकर डाक बंगला गोलंबर पर मिलने वाली सड़क पर हज़ारों लोगों का काफिला रोक रखा गया था। उनको आमंत्रित करता और उनका अभिवादन स्वीकार करता जुलूस बेली रोड की तरफ मुड़ा।

रेवेन्यू बिल्डिंग के पास की घेराबंदी पर लाठीधारियों का बड़ा जमावड़ा था। लाल कपड़े पर लिखी सूचना वे प्रदर्शनकारियों को दिखा रहे थे—'इससे आगे बढ़ने की सख्त मनाही है। यदि कोई आगे बढ़ेगा तो उसके साथ जबर किया जाएगा।'

यह सूचना नहीं थी, धमकी थी कि यदि पिछली बार की तरह यहां भी घेराबंदी पार की गई तो अंजाम अच्छा नहीं होगा। जुलूस रुक गया। आगे की पंक्ति में खड़े प्रदर्शनकारियों और सी० आर० पी० में बात हो रही थी कि बेंतधारियों ने बेंत खींच ली और निहत्थे, नारे लगा रहे लोगों को पीटना शुरू किया। लोग गिरे और सर से खून छलक पड़ा। जयप्रकाशजी अपनी गाड़ी पर खड़े यह देख रहे थे। लाठीधारियों के पीछे से अश्रुगैस के गोले चलाए जाने लगे। तेज़ धुंध से बेहाल भीड़ भागी। जयप्रकाशजी ने रूमाल से अपनी आंख, नाक बंद की और पानी मांगने लगे। पर, सबकी आंखें तो बंद थीं। पुलिस गाड़ी से लगातार आवाज़ आ रही थी, 'बायें कोने में और गोले फेंको, दाहिनी ओर लाठीचार्ज करो!'

धुएं से कड़ुवाती आंख और घुटती सांस के बाद भी जयप्रकाश बाबू गाड़ी से उतरकर घेरा तोड़ते हुए भीतर चले। सी० आर० पी० के जवानों ने अंधाधुंध लाठियां चलानी शुरू कर दीं। एक घातक लाठी जयप्रकाशजी के सर पर लगती, इससे पहले ही नानाजी देशमुख ने उसे अपनी कलाई पर रोक लिया। उनके हाथ से छिटककर लाठी जयप्रकाशजी के गले के पास की हड्डी पर लगी। अगल-बगल के लोगों की जमकर पिटाई हुई। लाठी की दूसरी चोट से जयप्रकाशजी बचे, चूंकि बाबूराव चंदावार ने उन्हें नीचे गिरा लिया। इतिहास का वह एक अनोखा दृश्य था। सड़क पर जयप्रकाशजी गिरे हुए थे। उनके नीचे भी लोग थे और उनके ऊपर भी। चारों ओर सी० आर० पी० के जवान लाठियां लेकर भूखे भेड़िये की तरह कूद रहे थे। सुबह से अब तक की थकान और परेशानी, अश्रुगैस आदि से जयप्रकाशजी का चेहरा काला पड़ गया था। थोड़ी देर जयप्रकाशजी नीचे गिरे रहे। फिर उठकर आगे बढ़े। उनके साथ अब भी लड़के चल रहे थे। नारे लगाए जा रहे थे। सड़क किनारे एक छोटी-सी पान की दूकान के सामने खाट पर पसीने से लथपथ जयप्रकाशजी बैठे। भीड़ ने घेर लिया। पत्रकारों ने सवाल पूछे। थके स्वर में भी बड़ी दृढ़ता थी, जब जयप्रकाशजी ने कहा कि कल पटना बंद रहेगा और परसों बिहार।

पीछे छूट गए जुलूस पर लाठी और अश्रुगैस का प्रहार जारी था। जयप्रकाशजी जिस जीप पर थे उसको सी० आर० पी० के लोग बुरी तरह पीट रहे थे और जीप धीरे-धीरे पीछे लौटाई जा रही थी।

लाख रोकने पर भी कारवां नहीं रुका। चारों ओर से लड़के चले आ रहे थे। हज़ारों पीछे छूटते थे और हज़ारों साथ आ जाते थे।

आखिर जुलूस वहां पहुंच ही गया जहां विधायक रहते हैं। 'विधायको, इस्तीफा दो' के शोर से कान फटने लगे। दारोगाप्रसाद राय के मकान के सामने खाली जगह में पेड़ की छाया थी। जयप्रकाशजी वहीं बैठे। चारों बगल फिर आंदोलनकारियों की भीड़ बैठी। प्यासों ने पानी पीया और कुमारी जानकी ने अपने चेतनास्पर्शी स्वर में गीत सुनाए : 'किन्नर गंधर्व देवताओं की बात नहीं, मानव को मानव से मुक्त-मिलन चाहिए।' इस गीत ने उपस्थित लोगों की भावनाओं को कहीं बहुत गहरे छू लिया।

जुलूस यहां से आगे चला तो सामने सी० आर० पी० के लाठीधारी जवान खड़े थे। जयप्रकाशजी ने कहा कि इस घेराबंदी को नहीं तोड़ना है। हम लोग यहीं बैठकर धरना देंगे। उनके साथ-साथ सब आंदोलनकारी बैठ गए और नारे लगाने लगे। पूरा माहौल शांत था। पर शांत माहौल इस सरकार को कैसे अच्छा लगता? बस लाकर खड़ी की गई और बैठकर नारे लगाते सत्याग्रहियों को पकड़-पकड़कर बस में बैठाने लगे। गिरफ्तार हुए। सत्याग्रही एक-दूसरे से चिपक गए। पुलिस ने घसीट-घसीटकर, बूट से मार-मारकर अपनी बस भरी और उन्हें लेकर बस चल पड़ी। जयप्रकाशजी के चारों ओर बना घेरा छोटा हो गया। सरकारी योजना थी कि धीरे-धीरे जयप्रकाशजी के साथ के सब लोग गिरफ्तार कर लिए जाएं और उन्हें अकेला छोड़ दिया जाए।

दूसरी बस आई। फिर लड़कों को घसीटा जाने लगा कि जयप्रकाशजी अपनी जगह से उठे और बस की ओर चले। पटना के जिलाधिकारी रास्ते में आ गए, 'सर, आपको गिरफ्तार करने का आदेश नहीं है।'

'आप मेरे रास्ते से हट जाइए!' कहते हुए जयप्रकाशजी तेज़ी से बस की ओर बढ़े और आपत्कालीन द्वार से लोगों ने खींचकर उनको बस में कर लिया। उनके घुसने के साथ ही बस पूरी तरह भर गई। बस के भीतर ठूंस-ठूंसकर लोग भरे। जो बचे वे छत पर बैठ गए। जो उससे भी बचे वे बस के आगे-पीछे बैठ गए। खेतों से, गलियों से होकर लोग वहां पहुंचने लगे और देखते-देखते वहां सिर्फ सर ही सर दिखाई देने लगे। काफी देर तक व्यवस्था के ठेकेदार अचंभित-से खड़े रहे। जयप्रकाशजी गाड़ी में थे और आंदोलनकारी गाने गा रहे थे, नारे लगा रहे थे।

पुलिस ने बाहर खड़े आंदोलनकारियों को फिर गिरफ्तार करना शुरू किया और ज़िलाधिकारी के अनुरोध पर जयप्रकाशजी ने आंदोलनकारियों को पुलिस की गाड़ी में बैठ जाने का निर्देश दिया। गाड़ियां भर-भरकर जाती थीं और जितने जाते थे उससे दूने लोग आ जाते थे। गलियों, कूचों पर सी० आर० पी० को खड़ा कर जन-प्रवाह को रोकने की कोशिश की गई। पर, सब व्यर्थ!

बस की खिड़की से जयप्रकाशजी पत्रकारों से बातचीत करते थे। आज की घटना पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा—'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः'। बस में ही आंदोलनकारियों ने पटना के नागरिकों द्वारा भेजा भोजन खाया। अरुण ने अपने गीत 'जयप्रकाश का बिगुल बजा तो जाग उठी तरुणाई है' से सबको झुमा दिया। शाम हो गई तो खुली हवा में सांस लेने जयप्रकाशजी समेत लोग बस से बाहर आए। शाम के अंधेरे में प्रार्थना-सभा हुई और कुमारी जानकी तथा अन्य लोगों ने भजन व गीत सुनाए। अशोक 'मोती' ने भारतीय सांस्कृतिक क्रांति का गीत गाया। वातावरण इतना सहज हो चला था कि सी० आर० पी० के जवान भी आंदोलनकारियों के साथ मिलकर भजन सुन रहे थे।

जयप्रकाशजी जब बस में बैठे थे तब ज़िलाधिकारी ने कहा कि यह बस 'पंक्चर' हो गई है। इसलिए हम इसे चला नहीं पा रहे हैं। पर, जब प्रार्थना-चल रही थी तो वह बस चल पड़ी। उस बस के जाने के बाद फिर ज़िला-अधिकारी आदि पहुंचे और उनके आदेश पर बड़ी अनिच्छा से सिपाहियों ने भजन-गीत में लीन आंदोलनकारियों को गिरफ्तार करना शुरू किया। प्रार्थना के माहौल में यह बदतमीज़ी सबको बड़ी नागवार गुज़री और श्यामनन्दन बाबू बड़े ही क्षुब्ध हुए। जयप्रकाशजी फिर उठे और लोगों को गिरफ्तार करने आई बस की ओर चले। काफी दूर तक पैदल चलने के बाद भी कहीं जब बस नहीं मिली तो सारे लोग जयप्रकाशजी समेत सड़क किनारे बैठ गए। लोक-नायक का इस प्रकार लोक से घुलमिलकर चलना-बैठना अपने-आपमें एक नई दिशा का संकेत था। पुलिस के कारण गीतों में जो खलल पड़ा था उसे फिर से बड़ी ही जानदार आवाज़ में कुमारी जानकी ने जमाया, और गीत के अंत में लगाया नारा जो देर तक मंत्रियों के बेजान बंगलों से टकराकर लौटता रहा, 'दम है कितना दमन में तेरे, देख लिया और देखेंगे!'

यह सब हो ही रहा था कि एक बस आकर लगी और फिर से धरपकड़

आरम्भ हो गई। जयप्रकाशजी फिर से उठे और बस में जा बैठे। आंदोलन-कारी भी बसों में भर गए। बस चल पड़ी। नारों से रास्ता गुंजाते लड़कों को लिए बस कदमकुआं पहुंची सायं ७-३० बजे। रात में १० बजे तक धरना का कार्यक्रम चलाने की योजना थी। जयप्रकाशजी के घर से कुछ पहले बस रुक गई। जयप्रकाशजी ने कहा कि १० बजे रात तक बस से कोई नहीं उतरेगा। बस वहीं खड़ी रही। गीत और गाने हुए।

ठीक १० बजे जयप्रकाशजी बस से उतरे। उतरते समय बस के चारों ओर इकट्ठी हो आई बड़ी भीड़ को संबोधित करते हुए जयप्रकाशजी ने कहा कि आज जितनी फूहड़ बर्बरता अपने लम्बे सामाजिक और राजनैतिक जीवन में मैंने पहली बार देखी है। अब लड़ाई सीधे दिल्ली से है, जिसके लिए हमें एकजुट होना है।

बस से उतरकर जयप्रकाशजी सीधे अस्पताल गए, जहां उन्होंने दिन-भर घायल हुए आंदोलनकारियों से भेंट की।

जब आप पटना से बाहर निकलेंगे, तब चाहे किसी दिशा में, किसी भी सवारी से या पैदल जाएं, सड़कों पर जगह-जगह देखेंगे, लोकनायक जयप्रकाश के स्वागत में नये, ताज़े, पुराने, टूटे-फूटे पुष्पद्वार, बन्दनवार। दुकानों और घर की दीवारों पर चिपके हुए छोटे-बड़े पोस्टर। बाज़ारों में, सड़क के किनारे चाय की गिमटियों पर गांव और कस्बे के लोग आपस में बातें करते मिलेंगे—सुनी रउवा, जैसे-जैसे आंदोलन बढ़ि रहल बा, महंगाई, बेइमानी अउ सरकारी दमन भी बढ़ि रहल बा।

आप और आगे बढ़िए। पटना से बहुत दूर जाने का मन नहीं है तो यहां से बाहर तो निकलिए। पटना से दानापुर। फौजी छावनी में न जाने किस युद्ध की तैयारियां पूरी हैं। चाहे 'बाई पास रोड' पकड़िए, चाहे मार्टिन साहब की छोटी लाइन, दानापुर से शेरपुर, फिर मनेर। दूसरी ओर आरा, सहसराम, मोहनियां, कर्मनासा और उत्तरप्रदेश की सीमा। सड़क पर चलते हुए किसी जगह रुककर पूछिए, तो लोग मगही और भोजपुरी में पूरे विस्तार से बताने लगेंगे कि तीन, चार और पांच अक्तूबर को बिहार बन्द में क्या हुआ।

रेलगाड़ियां नहीं चलीं। ट्रकें और मोटरें जहां आकर रुकीं, वहां उनके लिए गांववालों ने भोजन-पानी का मुफ्त प्रबंध किए। ज़िला रोहतास, मझुआ रोड रेलवे स्टेशन पर हज़ारों सत्याग्रहियों की भीड़। जनता रेल

की पटरियों पर बैठी थी। तीन तारीख को वहां से रेलगाड़ी चलने को थी। हुकुम हुआ, सीटी बजाकर चला दो गाड़ी। गाड़ी ने सीटी दी। तभी गांव की एक बूढ़ी औरत दौड़कर ड्राइवर के पास पहुंची और उसका हाथ पकड़कर बोली, 'तू तो हमार बेटा, ह मतोहरा के माई।' ड्राइवर रेलगाड़ी से नीचे उतर आया।

कहा जाता है, सहसराम से बारह मील पूरब सोन नदी के किनारे डेहरी आन सोन पर एक अपूर्व घटना घटी। यहां गांव से बंद के लिए आए हुए सत्याग्रहियों पर गोली चलाने के प्रश्न पर बिहार मिलिट्री पुलिस और बार्डर सिक्योरिटी फोर्स के बीच समस्या उठी। कहते हैं कि झड़पें हुईं और अन्त में दोनों के बीच गोलियां चलीं।

गंगा की तलहटी या दियारे के गांवों से होकर मनेर की ओर चलें। गंगा टोला, जिराखन टोला, ऐसे ही नाम हैं इन गांवों के। इस अंचल में यादवों की बस्ती है। उनके एम० पी० हैं कम्यूनिस्ट पार्टी के एक सदस्य। आप पूछिए इन गांवों से—'हे भाई, साफ-साफ बताओ, जब ई जन-आन्दोलन है तो सी०पी० आई० इसके [विरोध में क्यों है?' गांव के एक किसान ने बताया—'हमारे एम० पी० जाति के यादव हैं, हम तो सिर्फ इतना ही जानते हैं।'

तब तक गांव से सड़क पार आते हुए बिहटा कालेज में पढ़ने वाले एक छात्र ने कहा—जिसे प्रजातन्त्र में सबसे ज़्यादा अविश्वास था, वही आज प्रजातन्त्र का सबसे बड़ा रक्षक हो गया है।

गण्डक नदी से चलकर बक्सर तक फैले हुए यादवों के इस बृहत् अंचल में मनेर एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अठारह मार्च को पटना में जो पहली घटना घटी थी—आगज़नी और गोलीकाण्ड की, उसमें यहीं के रमेसरसिंह पुलिस की गोली से मारे गए थे।

मनेर में बीस मार्च को शोकसभा बुलाई गई थी। दानापुर और बिहटा कालेजों में पढ़ने वाले इस अंचल के छात्रों ने संघर्ष समितियां बनाकर बिहार आन्दोलन का सूत्रपात किया था। उसी दिन मनेर के आसपास से आए हुए लोगों ने मनेर छात्र नेता राजीवनन्दनसिंह उर्फ लल्लन को यह कहते हुए गिरफ्तार होते देखा था कि मनेर में बाहर से लोग टैम्पो में बैठकर आए हैं और इस अहिंसक आन्दोलन को हिंसा में बदल देना चाहते हैं। राजदेवसिंह, जो अब संन्यासी बनकर राजदेव भारती हो गए हैं, रोते हुए बताते हैं कि किस तरह बाहर के गुण्डों ने आकर मनेर में आगज़नी करके आतंक का वातावरण पैदा किया था और फिर वे कैसे अदृश्य हुए थे। इसके बाद ही वहां गिरफ्तारियां शुरू हुईं और बिहार के आन्दोलन से लोग अनजाने ही जुड़ने लगे।

अप्रैल में छात्रों ने यहां अनशन किए। गांवों में नारे गूंजने लगे—'दम है कितना दमन में तेरे, देख लिया और देखेंगे।'

१९४७ में गांधीजी साम्प्रदायिक दंगों को समाप्त करने के लिए बिहार में जहां-जहां घूमे थे, १९६७ में बिहार-अकाल के दिनों में जे० पी० ने प्रभावती के संग सहायता-कार्य के लिए जहां-जहां शिविर लगाए थे, १९७० में जहां-जहां विनोबा ने ग्रामदान-भूदान के लिए सर्वोदयी यात्राएं की थीं, वहां-वहां आज के बिहारवासी पुरानी घटनाओं को आज के आन्दोलन से जोड़ते हैं।

आरा से लेकर छपरा, सिवान और सारन के ग्राम अंचलों में १९४२ के दिनों में भारत-प्रेम के जो लोकगीत गाए गए थे वे आज फिर से गाए जाने लगे हैं:

सुन्दरा सेअमि भइया
भरता के देसवा से
मोरे प्राण बसहिं हिम खोह रे बटोहिया।
जाहु-जाहु भइया रे बटोहि हिन्द देखि आवो
जहवां कुहिकि कोयल बोले रे बटोहिया।

चम्पारन के अंचल में गांधीजी ने निलहे साहबों के अत्याचार और शोषण के खिलाफ जो सन् इक्कीस में सत्याग्रह चलाया था, और तब उन दिनों आरा ज़िला निवासी मनोरंजनप्रसाद ने जो 'फिरंगिया' लोकगीत बनाए थे, वे भी आज न जाने क्यों और कैसे दुहराए जा रहे हैं।

सिवान में महाराजगंज के पास बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री महामाया-प्रसाद के गांव पटेढ़ी के बाज़ार में रविनन्दनसिंह उर्फ कविजी से बिहार आंदोलन के बारे में प्रश्न पूछते ही, वह बोलने लगे—'हम एगो पढ़ल-लिखल इन्सान बानी। हम बिहार विश्वविद्यालय से बी० ए० इतिहास में आनर्स बानी। हम बहुत पहले से ही शान्तिप्रिय तथा साथ ही साथ क्रांतिकारी विचार के हई। जयप्रकाश बाबू के जौन आंदोलन चल रहल बा, पहिले से हमारा मानो संबंध बाटे। डाक्टर साहेब, जे हमरा के बीच आज उपस्थित बानी, उहां आपके पाके हमरा के बहुत खुशी बाटे। जयप्रकाश बाबू के आंदो-

लन के प्रचार-प्रसार त पहले शहर तक ही सीमित रहल, लेकिन अब धीरे-धीरे जनजीवन से भी आकर संबंध आ हो बाटे। दिन पर दिन ई आंदोलन जोर पकड़ रहल बाटे। अब त देहात के लोग भी आंदोलन में हाथ बटावत बाटे।

मारन से चम्पारन अंचल की ओर चलते हुए सरहरी गांव में एक किसान युवक गाता चला जा रहा था :

कांगरेसिया छली मति आना गली
तेरे पापों से उमड़ल गगरिया हो।
जाहु कांगरेसिया तू विपत बिलरिया
बगुला भगत कैसे आइल दुअरिया
मुंह न देखब मोरा दिल न दुखाव
तोरा लाजो न लागे नजरिया हो।
सीमेंट के बोरिया ओ कोइला कै चोरिया
लोहा चोराय आना न डाकू दुअरिया हो।

सलीमपुर घाट से नारायणी नदी पार करके अरेराज स्थान मिलता है। मंदिर के पास टैक्सी या बस मिलती है—बेतिया और मोतिहारी जाने के लिए। बेतिया पश्चिमी चम्पारन का हेडक्वार्टर है और मोतीहारी पूर्वी चम्पारन का। बेतिया से आगे उत्तर में नेपाल बार्डर के पास थारू जाति के लोग मिलते हैं। बहुत ही सीधे-सादे, मजदूर और खेतिहर लोग हैं थारू जाति के। ये भी जे० पी० की जय-जयकार करते हैं। पूछो कि जे० पी० कौन हैं, तो बकर-बकर मुंह निहारते रह जाते हैं। बिहार आंदोलन क्या है ? तो थारू स्त्रियां लजाकर मुंह फेर लेती हैं। बेतिया में सोलह मार्च को पहली फायरिंग हुई थी। बेतिया का कलक्टर भूमिहार था, एस० पी० हरिजन। दोनों में खूब चलती थी।

पहली फायरिंग के बाद बेतिया के मुसलमान, हिन्दू और ईसाई लोगों ने मिलकर—यहां तक कि सी० पी० आई० समेत सारी राजनीतिक पार्टियों ने कांग्रेसी हुकूमत के दमन के खिलाफ आवाज उठाई थी। उत्तेजित भीड़ पर पुलिस कप्तान ने फिर अपनी पिस्तौल से गोली चलाई थी। तब दो छात्र और मरे। फिर तीसरी बार भी गोली चली उसी मार्च महीने में। अठाइस युवक मरे थे। सरकार के अनुसार सात मरे। तभी वहां से हवा उड़ी। वही हवा

इसी तरह अन्य क्षेत्रों से भी बहती हुई तब अठारह मार्च को उस तरह पटना पहुंची थी।

मोतिहारी से दूरदराज एक गांव पताही में प्रखण्ड कार्यालय के घेराव में चार अक्तूबर को पुलिस ने गोली चलाई। मरा कोई नहीं, पर गांव के अनेक छात्र और युवक घायल हुए थे।

चम्पारन से भागलपुर। गांव पुनामा प्रतापनगर। गांव के एक बुजुर्ग शीतलाप्रसाद राय से आंदोलन के बारे में पूछते ही वह मैथिली भाषा में कहने लगे—'बबुआ, हम तोरा की कहियन कि सन् बयालीस में भी आंदोलन भैलो रहे। कोई समय ते गांधी के आवाज पर सारा काम भैंयले रहे, लेकिन जितना आदमी आज जयप्रकाश बाबू के कारन आंदोलन में भाग ले रहले छै, उतना आदमी बयालीस में नै भाग लेते रहे। आजु हमरो उमीर बासठ साल के है, लेकिन हमरो मोन में लगले छै कि हम हू सब लड़का के आगई जाए कै आंदोलन करिअई।'

यह पूछने पर कि गांव के लोग जे० पी० के इस आंदोलन का समर्थन क्यों कर रहे हैं, उन्होंने उत्तर दिया—'आंदोलन के समर्थन हमें ऐले करे छी कि आज यदि हमें ब्लाक में एक बोरा बीज या खाद ले जाय छियै ते उकरो में घूस मांगै छै। यदि बेटी के बिआह ले चीनी मांगे छियै तो, उकरो में घूस। हम्मे सब अई चुनाव में कांग्रेस के बोट देलिए और कांग्रेस के एम० एल० ए० जितल कै। जैहिया स वो जीतिकै गैले, तहिया से एक्को बार हमरा सब उनका नै देखलिए। जहिया वो चुनाव लड़ल रहै, वो बहुत गरीब रहै, लेकिन ई तीन बरस में वो काफी अमीर भै गेला। हमरा सब कै ई बात कहै में तनिको लाज नै आवै छै कि इकरा से अच्छा अंग्रेजे रहे।...'

तो क्या बिहार का इतना व्यापक यह जन-आंदोलन किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध है ? नहीं। क्या यह वर्तमान शासकीय अधिकारियों के विरुद्ध है ? नहीं। दरअसल यह आंदोलन उस व्यवस्था के खिलाफ है, जहां से इतना भ्रष्टाचार, अंधकार और अन्याय पैदा होता है। यह आंदोलन उस सरकारी मशीन, उस राजनीतिक तन्त्र के खिलाफ है, जिसमें आम आदमी के जीवन और उसके दुख-सुख की कोई कीमत नहीं। जिसमें पलकर, सांस लेकर और शिक्षित होकर हम मूल्यहीन और आदर्शरहित हो जाते हैं। इसलिए बिहार आंदोलन अपनी सारी सीमाओं के बावजूद उस व्यवस्था के खिलाफ है, मगर यह उसका अन्त नहीं है। व्यवस्था-परिवर्तन बाद से ही आम आदमी का

जीवन नहीं बदला जाता। व्यवस्था के साथ-साथ आदमी के भी बदलने की जरूरत होती है। इसलिए बिहार का यह जन-आंदोलन जितना व्यवस्था के खिलाफ है, उतना ही अपने खिलाफ भी है।

यह एक महायज्ञ है और युद्ध भी। अपने-आपसे भी और दूसरों से भी। तभी इसे हर कीमत पर भी सत्य और अहिंसा के ही धरातल पर चलना है। इसमें ईमानदारी से ज्यादा भागीदार हैं—किसान, मज़दूर, आम लोग, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग। उच्चवर्ग खड़ा देख रहा है, जैसे बुजुर्ग लोग अपने संघर्षरत जवान लड़कों की ओर देख रहे हैं, शिक्षक लोग अपने विद्रोही छात्रों को देख रहे हैं। इसमें पहली बार गांव, शहर, कस्बे, विभिन्न जातियां, बूढ़े, जवान, बच्चे, स्त्री-पुरुष सब एक सत्याग्रह-मंच पर आकर उस सोए हुए भारत को जगाना चाहते हैं।

इसके बाद ही बंदबिहार। ऐसा बंद भारत के किसी प्रदेश में, किसी समय, कभी भी नहीं हुआ था। ज़िला रोहतास, भभुआ रोड रेलवे स्टेशन से नौ मील दूर मोहनियां गांव में एक वयोवृद्ध किसान ने कहा—'ए बबुआ, चम्पारन में जब गांधीजी आइल रहली, तब बेतिया में निलहा साहेब की कोठी पर हमनी के धरना देहल रहली सन्। सन् बयालिस के बकत ही हमका राउर कै बताई। अरे अजादी की लड़ाई मा ज्यादा से ज्यादा एक दिन कै बंद होत रहल—और अंगरेज हुकूमत के दिमाग चक्कर खाय जात रोहल। ए बबुआ, ऐसन बंद, वह भी तिन दिनन कै, न हमनी कै कहूं सुनले रहलीं न देखले रहलीं सन्।'

फतुहा से नालंदा जाते समय सईदपुरा गांव के पास चाय की एक दुकान। एक पान-बीड़ी वाला। मैंने पूछा—'क्यों भाई, बंद के तीनों दिन आपकी दुकान बंद रही?' दुकानदार बोला—'जी हां सरकार।' मैंने कहा—'चाय और खाना-पीना की दुकान को तो बंद करने के लिए जे० पी० ने नहीं कहा था!' वह तपाक से बोला—'अरे हमनी कै बिना तो आंदोलन न चले हई। आखिर हमार जोगदान कहां जाई। आपै बताई न।'

आसपास से तमाम गांव वाले घिर आए थे। सब लोकनायक जयप्रकाश के नारे लगाने लगे। मैंने शांत किया। गांव के लोग बड़ी प्यारी मगही बोली में कहने लगे थे—'हमहूं आंदोलन नधले हई। बिहार सरकार लूटत आय। भाव बढ़त जात। पैसा नहिखे। राउर समझ लेई, ई जन-आंदोलन हवे। कम नहिखे करब।'

सरकारी, गैरसरकारी पढ़े-लिखे सब तरह के लोग, यहां तक कि सी० पी० आई० और सत्ता कांग्रेस के पक्षधर भी कहते थे—बिहार-बंद की ऐसी सफलता की कल्पना आयोजक तो क्या, जे०पी० तक ने भी नहीं की थी। सारा बंद सहज जन-सहयोग का परिणाम था। और यह बंद कितना व्यापक और जन-जन के दिल से निकला था कि इसका अनुमान लगाना बिहार के बाहर के लोगों के लिए असंभव है। बिहार के शहरों में रहने वाले भी पूर्णतः इसका सही अन्दाज़ लगाने में असमर्थ रहे।

पटना और पटना से बाहर निकलकर गंगा के इस पार और उस पार—आरा, भोजपुर, गया, नालंदा, छपरा, सिवान और चम्पारन के क्षेत्र में घूमते हुए इस रहस्य का पता चला। आंदोलन शहरों से गुजरकर अब दूर-दूर गांवों में चला गया है।

अब सवाल यह है कि इसे उतनी दूर इतने कम समय में ले कौन गया? कैसे पहुंचा गांव के आखिरी गरीब, निरक्षर, विवश, गंवार तक? सारन अंचल में डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के गांव जीरादेई और भूतपूर्व मुख्यमन्त्री महामाया-प्रसाद के गांव पटैड़ी से भी दूर गांव के बाजार में रामसरन हरिजन ने कहा—'सारा कारण महंगाई, बेइमानी होखे। भूख से मर लेके बाड़े, गोली खाय के काहें न मरि जाई।'

पटना से लेकर गया, छपरा, भागलपुर, चंपारन, मुज़फ्फरपुर तक और गांवों तथा कस्बों में एकमा, कुर्था, हाजीपुर, मनेर, डुमरी, सिवान, बेतिया, रांची, शाहाबाद आदि स्थानों पर जो लोग बिहार आंदोलन के सिलसिले में पुलिस की गोलियों से मरे हैं, वे लोग कौन थे? कैसे मरे? क्यों मरे?

एक किसान कहता है—जे भाग मा बदा रहल···।···रिक्शा-वाला बताता है—गोली खाए बदे तमाशा देखै आइल रहलै।···छात्र नेता गर्व से कहता है—वह शहीद हुआ। उसके बलिदान से, खून से बिहार की यह जनक्रांति सफल होगी।···सिपाही कहता है—जो हमको हुकुम मिलता है, हम वही ड्यूटी बजाते हैं। कौन कहां कैसे मरा, हमको पता नहीं।

लोग इसी प्रकार तरह-तरह की बातें करते हैं। कैफियत देते हैं। मृत्यु के तरह-तरह से अर्थ लगाते हैं।

पर मृत्यु तो मृत्यु है। किसकी, कहां और कैसे, यह सोचने की चीज़ है। लोग खड़े तमाशा देखते रह जाते हैं और उनके सामने ही एक आदमी की

हत्या हो जाती है। भीड़ पर गोली चला दी जाती है। भागते हुए आदमी की पीठ पर स्टेनगन की गोली लगती है, वह औंधे मुंह गिर जाता है। लोग भाग जाते हैं, तमाशबीन गोली का शिकार होता है···आदि-आदि। हर मृत्यु समान है, पर हर मृत्यु किसी व्यक्ति की मृत्यु है। हर मृत्यु असमान है, अलग-अलग है, पर हर मौत एक प्रश्न है।

थाना सोनपुर जहां खत्म होता है, वहीं गांव है डुमरी बुजुर्ग। गांव काफी बड़ा है। गरीब-अमीर दोनों तरह के किसान हैं। ब्राह्मण, भूमिहार, वैश्य, हरिजन, कई जातियों के लोग बसते हैं। पन्द्रह वर्ष का विनयकुमार शाह, जो सिवान स्कूल में दसवीं कक्षा का छात्र था, डुमरी गांव में आया था एक रिश्तेदारी में। उसकी बहन ब्याही थी इस गांव में। बहनोई की मां का स्वर्ग-वास हुआ था। उसका श्राद्ध था।

बिहार बंद का अंतिम दिन पांच अक्तूबर था। संध्या के पांच बज रहे थे। पटना की गंगा पर से वह सड़क छपरा जाती थी। उसीसे दो फर्लांग दूर यह गांव है। आसपास के गांव वाले सड़क पर धरना दिए बैठे थे। सशस्त्र पुलिस की भरी हुई लारी आई। सड़क से हट जाने का आर्डर दिया गया। सड़क पर भीड़ और बढ़ने लगी। अश्रुगैस नहीं थी। पहले हवाई फायरिंग हुई। जनता की भीड़ हटी नहीं। फिर फायरिंग शुरू हुई। ठीक उसी वक्त डुमरी बुजुर्ग गांव में शाह के दरवाजे पर श्राद्ध का ब्राह्मण-भोज चल रहा था। विनयकुमार दही-चूड़ा, चीनी परोस रहा था। तभी गांव के लोग पुलिस फायरिंग से गांवों की तरफ भागे। विनयकुमार दरवाजे से मुड़कर कुएं के पास आ ही रहा था कि उसे बी० एस० एफ० की गोली लगी। वह वहीं गिर गया। उसके दायें हाथ में चीनी लगी थी, बायें हाथ में दही। और उसके नंगे बदन से खून बह रहा था और वह बेहोश था। डुमरी गांव के घरों में स्त्रियां दहाड़ मार-मारकर रो रही थीं। चारों ओर आतंक छा गया था। भागते हुए लोगों पर गोलियां चलाई गई थीं। खेतों में लोग घायल पड़े थे। घरों में घुसकर पुलिस-शक्ति लोगों को पीट रही थी।

जब पुलिस-शक्ति सड़क से गुजर गई, तब लोगों ने बेहोश विनयकुमार को देखा। अन्य घायलों के साथ विनयकुमार प्राथमिक चिकित्सा के लिए डुमरी से नया गांव ले जाया गया। फिर उसे पटना ले जाने के लिए कहा गया—तुरन्त बदन से गोलियां निकालने के लिए शल्य-चिकित्सा अनिवार्य थी। किश्ती पर लादकर लोग उसे पटना की गंगा पार करा रहे थे। पर वह

पटना पहुंचने से पहले ही गंगा बांसघाट के सामने मर गया।

छपरा : उन्नीस मार्च। पथराव करती हुई भीड़ पर पुलिस ने दो स्थानों पर गोली चलाई। फलस्वरूप एक बीस वर्षीय युवक नईमुल हक की मृत्यु हुई। नईमुल हक छपरा शहर का ही निवासी था। उसे अपनी ही गली में भागते हुए गोली लगी थी और वह तत्काल मर गया था। घायल व्यक्तियों में एक सैयद फरीद हसन भी थे जोकि दहियावां छोटी मस्जिद के रहने वाले थे। नईमुल हक सिगरेट खरीदकर घर देने जा रहा था।

पांच सितम्बर को कुर्था में जगदेवप्रसाद ने प्रखंड विकास अधिकारी के सामने सत्याग्रह और गिरफ्तारी देने का कार्यक्रम रखा था। जन-संघर्ष समिति और शोषित समाज दल ने चार-पांच दिनों तक गांव-गांव घूमकर आयोजन की तैयारी की थी। पांच सितम्बर को ग्यारह बजे जुलूस निकाला और शोषित दल कार्यालय से चलकर बाजार होते हुए बारह बजे प्रखंड कार्यालय पहुंचा। जुलूस जब प्रखंड कर्यालय पहुंचा तो पुलिस के आठ-दस जवानों के साथ जहानाबाद के थाना प्रभारी, जिन्हें उस वक्त खास तौर पर बुलाया गया था, उसे रोकने के लिए दरवाजे पर खड़े थे। जुलूस के साथ प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री के पुतले भी थे। पुलिस और जूलूस के बीच दरवाजे पर ही थोड़ा संघर्ष हुआ। उसी समय बाहर के कुछ अजनबी लोगों ने सड़क के किनारे पड़े पत्थरों से पुलिस पर पथराव किए। इसके बाद पुलिस ने जुलूस को कार्यालय के अहाते में जाने दिया।

अहाते में जुलूस ने पुतले जलाए और सभा की। कोई दो घंटे तक यह सब शांतिपूर्ण ढंग से चलता रहा। इसी समय अचानक केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के पचास-साठ जवानों ने वहां पहुंचकर घटनास्थल को चारों ओर से घेर लिया। इन्हें देख लोगों में आक्रोश पैदा हुआ। इसी समय भीड़ में से 'कुछ लोगों' ने पुलिस पर फिर पत्थर फेंके। फिर क्या था, अधिकारियों ने लाठीचार्ज और अश्रुगैस का इस्तेमाल किए बिना गोली चलाने का आदेश दे दिया।

पुलिस की पहली गोली शोषित दल के नेता और उस जुलूस के अगुआ जगदेवप्रसाद के पैरों में लगी। उस समय वह पथराव करने वालों को रोकथाम करने में लगे थे। उसी समय उन्हें दूसरी गोली लगी और वह गिर पड़े। उनके साथी उन्हें उठाकर जीप से अस्पताल ले जाने लगे। उसी समय पुलिस के कुछ जवान दौड़े और घायल जगदेव को उनके साथियों से छीन लिया और कहा कि

इन्हें छोड़कर तुरन्त यहां से भाग जाओ वरना तुम लोग भी गोली के शिकार हो जाओगे। जगदेवप्रसाद तब तक ज़िन्दा थे।

कुर्था के बस अड्डे पर चाय वाली बुढ़िया डर रही थी कुछ बताने से। लड़के कुछ बताने के डर से दूर भाग जाते थे; क्योंकि उस दिन उसी बस अड्डे पर बरगद के पेड़ के नीचे जगदेव बाबू की जीप खड़ी थी और तेजी से खून टपक रहा था धूल में।

सबने कहा---जगदेव बाबू अस्पताल पहुंच जाते तो बच जाते।

फिर किसीने कहा---बचते कैसे, उनकी हत्या की उस तरह साज़िश जो की गई थी।

बस अड्डे पर ही पुलिस डी० एस० पी० बोला था—साले को जान से मार डालो वरना हम लोगों की जान नहीं छोड़ेगा।

बस अड्डे के दुकानदार बताते हैं— वह बुढ़िया रोने लगी यह बताकर कि कैसे उन लोगों ने बस अड्डे पर, बीच बाजार में जगदेव बाबू को लाठी और बन्दूक के कुंदों से मारना शुरू किया। शायद वह वहीं बस अड्डे पर ही मर गए। जनता खड़ी देखती रही।

कुछ लोगों का अनुमान था कि थाने पहुंचने तक वह ज़िन्दा थे। बस-कंडक्टर कहने लगा—नहीं, बस अड्डे से ही उनकी टांगों को उलटी ओर से पकड़कर घसीटते हुए उन्हें थाने ले जाया गया। बस अड्डे से थाना तीन सौ गज की दूरी पर है। बीच रास्ते में उन्हें लाठियों पर मृत मवेशी की तरह टांग लिया गया था। थाने में वह ज़िन्दा या मृत बहुत देर तक फर्श पर पड़े रहे।

जगदेव की पत्नी सतरंजना अपने बेटे के साथ शाम छः बजे कुर्था पहुंची। उस समय समूचे कुर्था में कर्फ्यू लग गया था। अधिकारियों ने सतरंजना को बताया कि जगदेव को इलाज के लिए गया अस्पताल भेज दिया गया है। वह गया पहुंची तो वहां के अधिकारियों ने बताया कि जगदेव की लाश पटना भेज दी गई है।

इसी सोलह अगस्त को बेगूसराय के पास मंझौल गांव में पुलिस ने चौदह वर्षीय नित्यानन्द को गोली से मार दिया। नित्यानन्द उधर से निकलते हुए जुलूस को खड़ा देखता रहा। गोली लगते ही वहीं ढेर हो गया।

कुर्था में पांच सितम्बर को हुए गोलीकांड के दूसरे शिकार बारह वर्षीय लक्ष्मण चौधरी ने पटना अस्पताल में दम तोड़ा। कुर्था में पहली मौत शोषित दल के नेता जगदेवप्रसाद की हुई थी। जगदेव राजनीतिक नेता थे, इसलिए

राजनीतिक दलों के लोगों ने उनकी मौत के बाद वह सब किया जो उनके लिए उचित था—मसलन, शोक-सभाएं, मौन जुलूस, कुर्था का नाम बदलकर जगदेव नगर करना, उस बरगद के नीचे उनकी मूर्ति-स्थापना का शिलान्यास। पर लक्ष्मण चौधरी न तो राजनीतिक नेता था, न किसी नेता का बेटा। इसीलिए लक्ष्मण चौधरी ने पटना के जनरल अस्पताल में चाहे ग्यारह तारीख की सुबह क्यों न मरा हो, उसकी लाश बीस घंटे से ज़्यादा समय तक केवल इसलिए उसके बिलखते हुए बाप को नहीं दी गई कि शासकीय अस्पताल द्वारा मृत घोषित करने के बाद भी उसका 'पोस्टमार्टम' पुलिस विभाग के डाक्टर द्वारा नहीं किया जा सका था। पूरे समय बाप और चाचा अस्पताल में बैठे रोते रहे। जेब में पैसे नहीं होने के कारण अस्पताल से दो मील पैदल जाकर ग्यारह की रात लक्ष्मण चौधरी के पिता और चाचा ने संघर्ष कार्यालय आकर छात्रों को जब बेटे की मृत्यु की खबर दी, तब दूसरे दिन सुबह कुछ छात्र पैसे लेकर अस्पताल पहुंचे और लक्ष्मण चौधरी की अंतिम क्रिया का प्रबंध किया।

लक्ष्मण की शवयात्रा में कुल बीस लोग थे।

बिहार आंदोलन, बिहार की जिस धरती का उगा पौधा है, वह धरती क्या है, उसका मिट्टी कैसी है, उसका सिंचन कैसे हुआ है? वर्षा समय पर हुई या भूकंप और अकाल से वह प्रभावित रही? इसका माली कैसा था? इसके कृषकों की प्रकृति क्या रही है? मौसम कैसा रहा? हवाएं कैसी चलीं? सूर्य कैसे तपा? उस समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सौन्दर्य-बोध की पृष्ठभूमि क्या है, जहां यह पौधा पनपा है? यही तो सांस्कृतिक संदर्भ है।

बिहार सारे भारत देश में एकमात्र ऐसा प्रदेश है जो लगातार विपत्तियों, उपद्रवों और संकटों का देश रहा है। पंजाब में आंतरिक संघर्ष नहीं रहा। बाहरी आक्रमण हुए। आर्य आए, हूण, शक, सीथियन, मंगोल, कुशान और यूनानी आए और पूरब की ओर बढ़ गए। मगर बिहार सदा आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के उपद्रवों और संकटों से पीड़ित रहा है। उसीको शांत और उसीका निराकरण करने के लिए कभी गौतम बुद्ध आए, कभी महावीर, कभी विनोबा और आज जयप्रकाश। सब अपनी कर्मभूमि बिहार ही को क्यों बनाते हैं? किसलिए? क्या बिहार का लोकमानस इतना कच्चा, अपरिपक्व, भावुक है कि जो आदमी यहां आता है, उसके साथ यह खड़ा हो जाता है? इसे

जानने के लिए हमें बहुत पीछे जाना होगा। पर इस समय उतना वक्त नहीं है। हम यहां इस वक्त केवल उसके मारतत्त्व को ही ले लेते हैं। और वह तत्त्व ऐसा है जो सारे आधुनिक भारत के संकट और विनाश के रहस्य को समझने की एक कुंजी है।

हमारा सारा अतीत और उस अतीत की संस्कृति, हमारे दिल पर बोझ की तरह है—जिसे हम अपने भीतर से उठाकर बाहर फेंक नहीं पाते। और हम खुद अपने उसी बोझ के हिस्से बन गए हैं। यही है हमारी सांस्कृतिक विरासत, जिसमें हम रहने को बाध्य हैं। और हम स्वप्न देखते हैं, जीते हैं, उस भविष्य में जिसकी रचना हमारे लिए दूसरों ने कर दी और हमने कायरों और निर्जीवों की तरह उसे स्वीकार कर लिया।

वे दूसरे कौन ?

अंग्रेज। और पश्चिम।

अंग्रेज नहीं तब साम्राज्यवादी अंग्रेज। भारतवर्ष उसके साम्राज्य का एक उपनिवेश बना। वह अंग्रेज यहां आया था अपने देश में औद्योगिक क्रांति करके। वह अपने साथ अपनी औद्योगिक संस्कृति ही नहीं ले आया था, बल्कि अपने पश्चिम के जीवन-मूल्य भी ले आया था। इससे जब भारतीय संस्कृति की टकराहट हुई तब एक ओर इसमें से निकला भारत का राष्ट्रीय आंदोलन, दूसरी ओर इसमें से निकली बंगाल की सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी चेतना, जिसके व्याख्याता थे—राजा राममोहन राय, जिन्होंने भारत और पश्चिम के जीवन-मूल्यों को समन्वय की दृष्टि से देखा। इन्होंने भारत के अपने निजी सांस्कृतिक संदर्भ में स्वतंत्रता, विकास, उन्नति और बुनियादी परिवर्तन को न देखकर पश्चिम के सांस्कृतिक संदर्भों में देखा। इस दुर्भाग्य और संकट को देखा महात्मा गांधी ने, जिन्होंने अपने विवेक से यह साफ देख लिया कि अंग्रेजों से भारतीयों का संघर्ष राजनीतिक स्तर पर उतना संकटपूर्ण नहीं है, जितना कि जीवन-मूल्यों के स्तर पर है। इसीलिए गांधी ने स्वतन्त्रता-आंदोलन को बड़ी गहनता और सूक्ष्मता से सांस्कृतिक संदर्भ दिया, क्योंकि उन्होंने अनुभव कर लिया कि अंग्रेज जो नई औद्योगिक संस्कृति लेकर भारत देश में आए हैं, उनका दर्शन है – प्रकृति के विरोध में खड़ा होना। प्रकृति के प्रति स्वामी विजेता का दृष्टिकोण, उसे मात्र शोषण की वस्तु मानने का दृढ़ संकल्प। जबकि भारत की अपनी निजी संस्कृति की बुनियाद है—मनुष्य प्रकृति की ही एक और अभिव्यक्ति है। ये परस्पर विरोधी नहीं, सहचर हैं, सहप्राण हैं। अंग्रेजों ने हमारी

गरीबी को दारिद्र्य का रूप देना चाहा। गांधी ने इसीके साक्षात्कार में दरिद्र-नारायण कहा। अंग्रेजों ने हमें अर्धविकसित साबित करना चाहा। गांधी ने अपने समूचे जीवनदर्शन से यह अनुभूति देनी चाही कि वह अर्धविकसित नहीं है जो तुम्हारी टेक्नोलाजी की दौड़ में पिछड़ जाने के कारण पश्चिमी सभ्यता की भौतिक सामर्थ्य से लोहा नहीं ले पा रहा है। अर्धविकसित वह है जो असत्य का सहारा लेता है, जो हिंसक है, शोषक है।

राष्ट्रीय आंदोलन को इसी आधार से सांस्कृतिक संदर्भ देकर गांधी ने स्वतन्त्रता-संग्राम को देखा और उसका सूत्रपात किया बिहार की चंपारन भूमि में।

दूसरी ओर था पश्चिम, जिसके द्वारा निर्मित भविष्य में हम जीने के लिए विवश किए गए। मार्क्सवादियों ने हमारे लिए यह सोच लिया कि जो विकसित औद्योगिक समाजों का वर्तमान है, वही कल को आज के अविकसित समाजों का भविष्य होगा। मार्क्स के अनुयायियों ने इस ऐतिहासिक भौतिकवाद को भारतवर्ष के भविष्य के इतिहास की अटल अनिवार्यता मान लिया। यह एक दूसरे प्रकार का साम्राज्यवादी दर्शन था, जहां मनुष्य और उसके व्यक्ति से उसका निजी विवेक, उसकी व्यक्तिगत स्थितियां छीन ली जाती हैं और उसके स्थान पर पार्टी और स्टेट आ जाती है। इस भयावह स्थिति का सामना किया जयप्रकाश, आचार्य नरेन्द्रदेव और डा० लोहिया ने—स्वतन्त्रता-संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध जिस राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किया गांधी ने, ठीक उसी प्रकार और उसी अनुपात में पश्चिम के उस ऐतिहासिक भौतिकवाद के दर्शन के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया जयप्रकाश और लोहिया ने। पटना की भूमि में ही वह पौधा रोपा गया। समाजवादियों ने उसकी किसानी की।

आज़ादी मिलने के बाद, जब अंग्रेज़ हमें अपनी विरासत में यहां अंग्रेजी भाषा, शिक्षा-पद्धति, नौकरशाही देकर और सबसे बड़ी बात जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्ति को अपने रिक्त राजसिंहासन का प्रथम प्रधानमंत्री और इस देश का उत्तराधिकारी बनाकर चले गए, तब स्वभावतः गांधी-दर्शन और पश्चिम-प्रेमी नेहरू की नीतियों के बीच टकराहट हुई। गांधी अपने ग्राम-स्वराज्य स्वप्न के वसीयतनामे पर हस्ताक्षर कर चले गए। डा० लोहिया अकेले अपने निजी ढंग से नेहरू की नीतियों के खिलाफ लड़ते रहे। और उधर स्वार्थसत्ता-होड़ और तथाकथित सिद्धान्तों की शिला पर गिर-गिरकर विरोधी पार्टियां टूटने लगीं। जयप्रकाश सत्ता की पूरी दलीय राजनीति से अलग सर्वोदय की लोकनीति से

सहमत हो जीवनदानी बने और उन्होंने कहा—'दलीय पद्धति को जैसा मैंने देखा, वह लोगों को डरपोक और नपुंसक बना रही थी। इसने इस तरह से काम नहीं किया कि जनता की शक्ति और अभिक्रम (इनीशियेटिव) बढ़े या उसे स्वराज्य स्थापित करने और अपनी व्यवस्था अपने-आप संभालने में सहायता मिले। दलों को तो केवल इससे मतलब था कि सत्ता उनके हाथ में आए और वे जनता के ऊपर, बिना शक जनता की सलाह से, राज्य कर सकें। मैंने ऐसा अनुभव किया कि दलीय पद्धति लोगों को भेड़ों की स्थिति में ला देना चाहती है, जिनका एकाधिकार केवल नियत समय पर गड़रियों को चुन लेना है, जो उनके कल्याण की चिन्ता करेंगे। मुझे इसमें स्वतन्त्रता का दर्शन नहीं हुआ, उस स्वतन्त्रता का या उस स्वराज्य का, जिसके लिए मैं लड़ा था और इस देश के लोग जिसके लिए लड़े थे।'

जे० पी० का सर्वोदयी होना, उनका जीवनदान, उनके वे सारे महत्त्वपूर्ण वक्तव्य जो एक ओर भारतीय दलीय राजनीति के विरोधाभास को और दूसरी ओर नेहरू नीति, उनकी कल्याणकारी राज्य की योजनाओं के खोखलेपन को प्रकट कर रहे थे, बिहार की भूमि से ही उपजे थे।

गया की भूमि से ही तब जे० पी० ने इतनी खुली बात निःसंकोच ढंग से नेहरू को लिखी थी कि 'भाई, निवेदन करना चाहूंगा कि विदेश के लोगों से आपकी सरकार को जो तारीफ की पर्चियां मिली हैं, उनसे आप अत्यधिक प्रभावित मालूम होते हैं। मेरी नजर में उन पर्चियों का बहुत महत्त्व नहीं है। अक्सर वे विदेशी हमारे सामान्य लक्ष्यों में विश्वास नहीं रखते। अक्सर वे यह देखने के लिए आते हैं कि किस प्रकार एक पिछड़ा हुआ राष्ट्र अपने काम-काज की व्यवस्था करना सीख रहा है। और जब वे हमारी संसद को, केन्द्रीय सचिवालय को, दामोदर घाटी निगम को देखते हैं और हमारी परिष्कृत अंग्रेजी सुनते हैं, तो बस, मुग्ध हो जाते हैं। लेकिन हमारी तो अपनी आकांक्षाएं हैं, हम उस बिन्दु से शुरू करना चाहते हैं जहां पूर्व और पश्चिम पहुंचकर रुक गए हैं और उनसे अधिक उन्नत (भौतिक सम्पत्ति में नहीं) समाज का निर्माण करना चाहते हैं। हमारे मापदंड विदेशी आगंतुकों के मापदंड से भिन्न होने चाहिए।'

हमें स्मरण रखना चाहिए आधुनिकीकरण के नाम पर नेहरू-काल ने जो इस देश का पश्चिमीकरण करना चाहा था उसके खिलाफ डा० लोहिया ने जो संघर्ष छेड़ा उसे निश्चय ही उन्होंने सांस्कृतिक संदर्भ दिया। उन्होंने हिन्दी भाषा, भारतीय भाषाओं के वर्चस्व का, गंगा सफाई, रामायण मेला आदि का

अभियान चलाया। पर तब तक तो नया धनिक वर्ग और नया बुद्धिजीवी सत्ताधारी समाज इस मुल्क में उभर आया था, वह स्वभावतः तब तक अपने सारे सांस्कृतिक मूल्यों के खिलाफ हो चुका था। उसके सामने विचार, लक्ष्य, विकास, परिवर्तन, जीवन, साहित्य, कला, राजनीति के मूल्यों के प्रति पश्चिमी मानक घर कर गया। साधन और साध्य का प्रश्न अप्रासंगिक हो गया। और लक्ष्य क्या? ले लो, मार दो, लूट लो, हटा दो, किसी तरह हथिया लो। मतलब, मेरे अलावा जो दूसरा है, वह मेरा दुश्मन है। दरअसल यही है मनुष्य का पश्चिमी व्यक्ति होना और पूरे समाज से कटकर, अपने-आपको ही स्वायत्त मानकर, प्रकृति के विरोध में खड़ा होना। अकेलेपन को स्वतंत्रता मान लेना, हिंसा को विरोध मान लेना, अपने अहम् और व्यक्ति को साबित करने के लिए मनुष्य-समाज को केवल एक भीड़ मान लेना, 'मास' मान लेना, जहां व्यक्ति पूरी तरह से स्वतन्त्र है कुछ भी कर डालने के लिए। चाहे वह चुनाव हो, चाहे शिक्षा, नौकरी हो, व्यवसाय हो या कोई भी लक्ष्य हो। अब कर्म नहीं सब धंधा हो गया। कुछ भी करो, सब लाजवाब हो गया।

सब कुछ राज्यशक्ति पर छोड़कर, राजनीतिक दलों पर सारा दारोमदार सौंपकर हम सब अपने-अपने व्यक्तिगत धंधों और चिंताओं में लग गए।

अजब सन्नाटा था। कहीं कोई परिवर्तन की स्थिति नहीं। सारा राजनीतिक वातावरण राजघरानों के गृह-कलह जैसा। विरोधी दल उतने कांग्रेस-विरोधी नहीं जितने परस्पर-विरोधी और आत्म-विरोधी। जनता फैसला देगी कि हमें अब कांग्रेस नहीं चाहिए, पर वह निस्सहाय खड़ी देखती रह गई। भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी, हर क्षेत्र में निराशा, इसके फलस्वरूप भारतीय लोकतन्त्र का जो लोक है, वह सबसे अधिक करुण स्वर में बिहार की भूमि पर कराह उठा कि—सुनते हैं न जी, इस सुराज से तो बेहतर अंग्रेजी राज; और तन्त्र कहता है—यहां की जनता नमकहराम है, इसके लिए कितना भी करो, एहसान नहीं मानती।

पर सांस्कृतिक दृष्टि से यह सब बीमारी के मात्र लक्षण हैं—असली बीमारी है वही, शुद्ध भारतीय संदर्भ में ग्राम-स्वराज्य लोकनीति के स्थान पर अंग्रेज और पश्चिम के मानक और प्रेरणाओं से स्वतंत्र भारत का तथाकथित आधुनिकीकरण। ऐसा आधुनिकीकरण कि समाज का एक बहुत छोटा-सा अंग शेष पूरे समाज को दबाकर झूठा आधुनिक बन बैठा।

स्वतंत्रता-संग्राम-काल में अंग्रेजों के विरुद्ध जो सांस्कृतिक युद्ध गांधीजी

ने छेड़ा था, आज़ादी के बाद अंग्रेज और पश्चिम के संदर्भ में समूचे नेहरू-काल में क्रमशः वही संघर्ष डा० लोहिया और जयप्रकाश ने किया।

डा० लोहिया के चले जाने के बाद अकेले जे० पी० ने उसी बिहार भूमि से समाजवादी, सर्वोदयी मोर्चे से जितना संघर्ष सत्तधारी कांग्रेस और कम्यूनिस्ट पार्टी के संयुक्त मोर्चे से किया, अंततः उसीमें से विकसित हुआ वह लोकनीति का पौधा, जिसकी भूमि तैयार की थी सन् बयालीस के विहार ने जिसे सूर्य का ताप दिया था समाजवादी आंदोलन ने, जिसे सींचा था सर्वोदय अभियान ने और जो अब विकसित हुआ है विहार छात्र, युवा जन संघर्ष आंदोलन के रूप में। इसका शुभारंभ किया गुजरात के युवकों ने। उन्होंने एक ऐतिहासिक स्थापना और उसकी सिद्धि यह की कि भ्रष्ट सरकार नहीं रह सकती। गुजरात की भ्रष्ट सरकार, गुजरात असेम्बली नहीं रहीं, पर भ्रष्ट समाज और उसकी व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रही।

इस प्रकाश में हम अब विहार आंदोलन और युवा-संघर्ष का चरित्र देखें। यह संघर्ष बुनियादी तौर पर परिवर्तन की मांग करता है। इसके लिए लोकतंत्रात्मक और संघर्षात्मक दोनों उपायों और साधनों को इस्तेमाल किया गया है। लोकतांत्रिक स्तर पर मूलतः दो लक्ष्य हैं--केन्द्र का विकेन्द्रीकरण और चुनाव-पद्धति में सुधार। संघर्षात्मक स्तर पर लक्ष्य व्यापक हैं—कांग्रेस-समर्थक सी० पी० आई० को छोड़कर समस्त विरोधी दलों को मिलकर देश-व्यापी संघर्ष, यहां के मनुष्य को जगाना और सत्ता-परिवर्तन ही नहीं सम्पूर्ण परिवर्तन की दिशा में चलना।

संघर्ष से संघर्ष समितियां विकसित हुईं—विहार में नगर से गांव-गांव तक। इसीसे संघर्ष पक्ष बनाम संघर्ष-विरोधी पक्ष का ध्रुवीकरण हुआ। इसने एक ठोस विचार दिया। 'जनता विधान सभा' मात्र से हमारी समस्याएं नहीं खत्म होंगी। वहां से तो असली काम शुरू होगा। राज्यशक्ति और उसके साधन जो अब तक अपनी-अपनी कुर्सी बचाने के लिए ही इस्तेमाल किए जाते रहे, वह शक्ति अब युवा शक्ति से मिलकर जनशक्ति बनेगी और यही परिवर्तन लाएगी। बिहार आंदोलन की भूमि से उपजे हुए इसी विचार को सांस्कृतिक संदर्भ देना है। वही इस आंदोलन को दीर्घकालिक, बहुव्यापी रूप देगा, वही इसे आंदोलन से गहरे ले जाकर संघर्ष की ऐसी भूमिका तैयार करेगा, जहां भारतीय संस्कृति और उसकी मनीषा के अर्थवान तत्त्वों से यह जुड़ेगा।

उस भूमिका को तैयार करने के लिए बड़ी कठोरता से और दृढ़ता से काम करना होगा। हमें यह देखना है कि जो छात्र, जो युवा शक्ति इस आंदोलन में आई है, उसकी प्रकृति क्या है ? वे कौन हैं ? स्वभावतः ये भावुक लोग हैं, कहीं से निराश और उदास होकर आए हैं। टूटकर भी आए हैं। अलग-अलग राजनीतिक दलों से जुड़े हैं और सबके निजी स्वार्थ हैं। अधिक संख्या में दूर देहात, नगर के निर्दलीय, आदर्शवादी और स्वप्न देखने वाले हैं। उच्च-मध्यवर्ग के लोग नहीं हैं। मध्यवर्ग से नीचे तक के लोग हैं इसमें। यह शक्ति शहर से उगकर देहातों, गांवों में फैल रही है, बहुत अंशों में ठीक उसी तरह जैसे आज-कल की लीडरशिप 'आक्टोपस' की तरह शहर से गांव की तरफ बढ़ती है।

इस दिशा को बदल देना होगा। गांधी ने अपने लोक-स्वराज्य और जे० पी० ने अपनी लोकनीति के संदर्भों में क्रमशः दरिद्रनारायण और ग्रामीण को अंतिम मनुष्य कहा है। उस घास की जड़ से अब यह यात्रा शुरू होगी। क्योंकि जड़ तो संस्कृति की ही होती है। जिसकी जड़ें धरती में पहले से ही मौजूद न हों वह विकसित ही कैसे होगा। विकसित तो वृक्ष ही होता है, शेष सब आकाशबेल है। और जड़ें कहां होती हैं ? धरती के गहन अंधकार में। जिन्दगी की तरह संस्कृति की जड़ें सदा दोहरी हैं। नीचे है अंधकार। वह अदृश्य है। ऊपर है वर्तमान। वह दृश्य है, हर क्षण विकासमान है। भारतीय संस्कृति जिसमें धर्म, दर्शन और जीवन सब कुछ एकसाथ समाहित है—उसका मर्म ही यही है कि ऊपर जाने का रास्ता सदा नीचे होकर जाता है। आंदोलन को गहरे जाना होगा, उस गहन अंधकार से संघर्ष में—जहां न जाने कब से हमारे आचरण, विश्वास, संकल्प जड़ हो गए हैं। हमारी कथनी और करनी में भयानक अंतर और अलगाव आ गया है। स्वतंत्रता-संग्राम-काल में यह निविड अंधकार उतना उभरकर हमारे सामने नहीं आया था, क्योंकि हमारा दुश्मन पराये मुल्क का था। उस युद्ध में राष्ट्रीयता का प्रकाश फूटा था। पर यह वर्तमान युद्ध अपने ही लोगों से है। स्वजन से है अर्थात् अपने-आपसे है। इसमें से आत्मसाक्षात्कार पैदा होना चाहिए, क्योंकि आज भारतीय संस्कृति की जड़ता, वह निविड अंधकार और तथाकथित आधुनिक भारत की विकृत तस्वीर सब एकसाथ हमारे पथ में है। विहार आंदोलन कहता है, जिसे अब पूरा देश सुनने लगा है कि हम सीधे ऊपर चले जाएं। पर, हम सीधे ऊपर नहीं जा सकते। अगर कहीं हमने ऐसा सोचा तो झूठे भविष्य की कल्पना, थोथे विचार शुरू हो जाएंगे। दर्शन में चले जाएंगे। धर्म छूट

जाएगा । हिंसा की राजनीति में चले जाएंगे, लोकनीति हाथ से फिसल जाएगी ।

जिस आंदोलन को संघर्ष से चलकर सम्पूर्ण क्रांति तक पहुंचने की कामना है, उसे अपनी जड़ें पाताल तक पहुंचाने की हिम्मत जुटानी होगी और उस पाताल में है युगों की गरीबी, असमानता, अंधविश्वास और शोषण के असंख्य दैत्य ।

'डेमोक्रेसी' का मूलाधार है सत्ता । और इसके सारतत्त्व तीन हैं :

•सत्ता के लिए होड़ •सत्ता का बंटवारा •सत्ता की चुनौती ।

डेमोक्रेसी के इन तीनों आयामों में अगर कोई एक भी आयाम भंग है, निर्जीव है तो डेमोक्रेसी उतनी ही अपूर्ण है, अधूरी है ।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम दो ध्रुवों के बीच गतिमान था --एक ध्रुव था अंग्रेजी राज, दूसरा ध्रुव था सुराज । बिहार आंदोलन का एक ध्रुव है कांग्रेसी राज, दूसरा ध्रुव हो गया है गैर-कांग्रेसी राज— विकल्प राज ।

किसी देश का लोकतंत्र उसी विशेष देश की अपनी श्रेष्ठ, सभ्यतम और सांस्कृतिक अवस्था का नाम है । यह उसी देश के सांस्कृतिक साधनों द्वारा प्राप्त करना होता है, कहीं से उधार नहीं लिया जा सकता है । भारतीय लोकतंत्र का दर्शन और व्यवहार हमें अपने ही सांस्कृतिक परिवेश से प्राप्त करने हैं—इसी लक्ष्य से यह आंदोलन संघर्ष गति से सांस्कृतिक क्रांति का स्वरूप ग्रहण करेगा । आंदोलन का वाहक, संघर्ष का नियामक, डेमोक्रेसी का साधक 'जन' होता है, मनुष्य, प्रजा नहीं । इस आंदोलन की प्रक्रिया में सामंतीय संस्कृति की 'प्रजा' को भारत की अपनी आधुनिक संस्कृति के नवनिर्माण से 'जन' में बदलना है । जनसमूह से जो यथार्थ 'लोक' बनेगा उसीसे सच्चा लोकतंत्र होगा । अभी यहां का आम आदमी शुद्ध सामंती अर्थ में प्रजा है । तभी वह आज के राजनीतिक परिवेश में सिर्फ 'वोटर' है ।

संस्कृति एक शक्ति है । शक्ति हमेशा किसी चीज से टकराकर पैदा होती है । यह टकराहट संस्कृति की द्वन्द्वात्मक प्रकृति में है । जैसे धारा और चट्टान । वह चट्टान क्या है, जिससे बिहार और भारत की युवा पीढ़ी टकराकर शक्ति पैदा करेगी ? वह चट्टान है वही अंधकार जो लोकतंत्र का रास्ता रोके हमारे सामने खड़ा है ।

शक्ति अपनी विशेष धरती से पैदा होती है, और वह अपनी ही विशिष्ट भूमि, मिट्टी, जलवायु और वातावरण से पालित-पोषित होती है । बाहर से

उधार ली हुई कोई भी चीज केवल वस्तु हो सकती है, शक्ति नहीं । उस शक्ति से कभी भी कोई क्रांति संभव नहीं ।

मिथिला के तांत्रिक, उनका शक्तिधर्म, केवल एक कर्मकांड था । कर्मकांड पैदा होता है भय से । धर्म का सार भय हो, यही है अंधशक्ति, जिसे अंधविश्वास कहा जाता है ।

बिहार में नक्सलवाद, जितना उस मिथिला के तांत्रिक से जुड़ा है, उपजा है, वह जैसा भी हो, अपना है । पर उसमें जितना चीन का 'माओ विश्वास' था, वह बाहरी है ।

अपनी धरती से पैदा हुई शक्ति, बिहार-आंदोलन के संदर्भ में वही लोकशक्ति है, जो कभी जनक के हल चलाने से जानकी के रूप में धरती से बाहर निकली थी ।

जानकी की जन्मभूमि मिथिला में तब सूखा, अकाल पड़ा था । अभाव से जनता त्रस्त हो उठी थी । राक्षसों के उत्पात से सारी मानवता त्राहि-त्राहि कर उठी थी तो राजा जनक ने हल चलाया था और भूमिजा जानकी प्रकट हुई थीं । शक्ति बाहर निकली थी । शक्ति तो मां होती है, वह किसी एक राम की पत्नी बनकर केवल खंडित, सीमित और फलतः अपमानित ही हो सकती है । वही हुआ । जानकी को पत्नी बनाते ही, लोकशक्ति को एकाधिकार में लेते ही अयोध्या में फूट पड़ी । राम-वनवास हुआ । दशरथ ने प्राण त्यागे । सीता-हरण हुआ । लंका जली । धोबी ने मर्यादा का दुरुपयोग किया और जानकी को फिर उसी पृथ्वी में अंतर्धान होना पड़ा । इस आशा में कि फिर कभी कोई किसान हल चलाएगा । उसी भूमि पर, पूरे भारत देश पर, शक्ति पर जो एकाधिकार करके कांग्रेसी राज ने भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता और अभावों का जो खेल खेला, उसमें शत-शत रावण, असंख्य उसकी सेना के बीच स्वयं राम ही फंस गए हैं । लोकशक्ति पृथ्वी के गर्भ में पड़ी छटपटा रही है । ऊपर हल चल रहा है । बिहार आंदोलन वही हल जोतना है । अभी उस भूमिजा शक्ति का निकलना शेष है । अभी हल जोता जा रहा है ।

गांधी ने कहा था कि भारत के गांव मरते हैं तो भारत भी मरता है । साथ ही उन्होंने जोरदार शब्दों में यह भी स्पष्ट रूप से कहा था कि आज गांवों का, उसकी भूमि का जो स्वरूप है, उसी रूप में उन्हें सुरक्षित रखने की बात वे क्षण-भर के लिए भी नहीं सोचते । अवश्य ही उन्हें मौलिक रूप से परिवर्तित करना होगा ।

लोकशक्ति का उदय, उसकी नवचेतना, यही है वह परिवर्तन। उसीको जे० पी० ने सींचा था अपनी ही भूमि पर 'लोक-स्वराज्य' के रूप में। बिहार आंदोलन उसीके कार्यान्वयन का यज्ञ है। जयप्रकाश हल चला रहे हैं।

लोक-स्वराज्य लोक-चेतना का फल है। जब शक्ति का दुरुपयोग होता हो, तब शहर से लेकर गांव के अंतिम आदमी तक सभी लोगों द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके वह स्वराज्य हासिल किया जा सकता है। ऐसी लोकशक्ति से जो स्वराज्य प्राप्त किया जाता है उसीमें से तब यह चेतना निकलती है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है। शक्ति पर किसीका एकाधिकार नहीं। वह मां है। वह लोकशक्ति है। वही मातु जानकी है···।

एक नया अध्याय

लोकनायक जे० पी० के नेतृत्व में जहां एक राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक संघर्ष चल रहा था, वहां इलाहाबाद हाईकोर्ट में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के खिलाफ राजनारायण द्वारा चुनाव-याचिका लड़ी जा रही थी।

बारह जून को इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश जगमोहनलाल सिन्हा ने श्रीमती गांधी के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया।

इस घोषणा से भारतीय राजनीतिक जीवन और उस राष्ट्रीय संघर्ष के इतिहास में अचानक एक नया अध्याय खुला। सारा प्रतिपक्षी दल एक जनता मोर्चा के रूप में संगठित हुआ। इसके नेतृत्व के लिए स्वभावतः जे० पी० का ही आह्वान हुआ।

२३ जून को जे० पी० पटना से दिल्ली पहुंचे और गांधी शांति प्रतिष्ठान की अतिथिशाला में ठहरे। उस क्षण से २५ जून की शाम तक पूरे भारतवर्ष के प्रतिपक्षी दल के नेता जे० पी० से मिलते-जुलते रहे। जनता मोर्चा के अध्यक्ष मोरारजी भाई ने जे० पी० की सलाह से एलान किया कि पांच दलीय जनता मोर्चा श्रीमती गांधी से इलाहाबाद का फैसला मनवाने के लिए २९ जून से राष्ट्रीय स्तर पर शांतिपूर्ण सत्याग्रह का आयोजन करेगा।

२५ जून को सायं छः बजे दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल सभा हुई। इसीमें बोलते हुए जे० पी० ने घोषणा की कि हम ऐसी अवैध सरकार का 'बाइकाट' करते हैं। जनता ऐसी हुकूमत को कोई कर नहीं देगी। गांव-स्तर से लेकर शहर और जिले से केन्द्र तक हमारा संघर्ष शुरू होगा।

२४, २५ जून। इन दो दिनों में जे०पी० ने जगजीवन राम और यशवंतराव चौहान से भेंट की। चन्द्रशेखर के नेतृत्व में करीब साठ-सत्तर कांग्रेस एम०पी०

जे० पी० के आह्वान पर गुप्त रूप से जनता मोर्चे के समर्थन में सामने आए।

पर इसके खिलाफ श्रीमती गांधी ने २५ जून की रात को क्रूर और दमनकारी कदम उठाया, उससे अचानक हिन्दुस्तान की सारी तस्वीर ही बदल गई।

२५ की आधी रात को गांधी शांति प्रतिष्ठान से पहली गिरफ्तारी जयप्रकाश की हुई। और उसके साथ ही समूचे देश के सभी प्रतिपक्षी नेता गिरफ्तार कर लिए गए।

२६ की सुबह श्रीमती गांधी ने आपात स्थिति की घोषणा की। और जे० पी० के शब्दों में '२५ जून, '७५ तक भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र था। २६ जून, '७५ से वह अधिनायक तंत्र में परिवर्तित कर दिया गया। २५ जून तक जनता इस देश की मालिक थी, परन्तु २६ जून से वह अधिकार छिन गया है और लोकशाही के स्थान पर एक व्यक्ति की तानाशाही कायम हो गई है।'

दिल्ली से गिरफ्तार करके कार से जे०पी० को हरियाणा के सोहना नामक स्थान पर ले जाया गया और वहां एक रेस्ट हाउस में रखा गया। स्वयं जे० पी० के ही शब्दों में--- 'सोहना पहुंचते ही मैंने देखा कि श्री मोरारजी देसाई भी गिरफ्तार करके ले आए गए हैं। उनसे फिर मेरी मुलाकात नहीं हुई, बावजूद इसके कि वे उसी बंगले में रखे गए।

'वहां केवल तीन दिन रहा। इसी बीच मेरा हृदय-रोग कुछ उभर आया। इसलिए २९ जून को दिल्ली के आल इंडिया इंस्टिट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेन्ज में आवश्यक जांच और चिकित्सा के लिए मुझे ले गए। जुलाई की शाम को एयर फोर्स के विमान से मुझे चण्डीगढ़ पहुंचा दिया गया। वहां मुझे पी० जी० आई० के अस्पताल में रखा गया। तब से रिहाई के दिन : १२ नवम्बर, १९७५ तक वहीं नज़रबंद रहा।

'नज़रबंदी के साढ़े चार महीने मैं बिल्कुल अकेला ही रहा। यह अकेलापन ही मुझे सबसे ज़्यादा अखरने वाली बात थी। इस दृष्टि से इंदिराजी की सरकार का मेरे साथ व्यवहार विदेशी अंग्रेज़ी सरकार के व्यवहार से भी बुरा था। क्योंकि सन् १९४३ में जब डा० राममनोहर लोहिया लाहौर किले में लाए गए तो हर दिन एक घण्टे तक उनसे मिलने और बातचीत करने की इजाज़त मुझे मिली थी।

'चण्डीगढ़ अस्पताल के जिस कमरे में मुझे नज़रबंद रखा गया था, वहां

घूमने के लिए केवल एक तंग गलियारा था, जिसके दोनों तरफ के कमरों में मेरे सशस्त्र पहरेदार रहते थे।

'अचानक एक दिन २७ सितम्बर को मेरे पेट में भयानक दर्द शुरू हुआ। वैसे दर्द का अनुभव मुझे जीवन में पहले कभी नहीं हुआ था। १२ नवम्बर, '७५ को अधमरा होकर मैं निकला। सरकार ने मुझे तब रिहा किया, जब उसे विश्वास हो गया कि मेरा रोग असाध्य है और मैं थोड़े दिन जीवित रहने वाला हूं। रिहाई के केवल एक सप्ताह पहले मुझे बताया गया कि मेरे दोनों गुर्दे बेकार हो गए हैं। गिरफ्तारी के पूर्व गुर्दे का कोई रोग मुझे नहीं था। नज़रबंदी के दौरान डाक्टरों ने कभी नहीं बताया कि मेरे गुर्दों में कोई खराबी है। एकाएक ५ नवम्बर, '७५ को आवश्यक जांच के बाद उन्होंने घोषित किया कि मेरे दोनों गुर्दे बिल्कुल खराब हो गए हैं। आज तक मेरी समझ में नहीं आया कि यह रोग मुझे कब, कहां और कैसे लग गया।

'जसलोक अस्पताल के डाक्टरों की सूझबूझ और मेहनत के फलस्वरूप मैं बचा लिया गया। मैं मानता हूं कि ईश्वर की कृपा मुझपर थी। पता नहीं वह और क्या काम मुझसे लेना चाहता है।

'तो मैं आपके बीच आ गया हूं और अब आपके बीच ही रहने की इच्छा है। मुझे अफसोस है कि २० जुलाई '७६ को जब बम्बई से यहां आया तो बिहार के विभिन्न इलाकों से जो हज़ारों लोग मेरे स्वागत के लिए आए थे, वे मुझे देख भी नहीं पाए, उन्हें निराश लौटना पड़ा। इसके लिए यहां का शासन ज़िम्मेदार है। उस दिन गिरफ्तार होने वालों में मेरे चचेरे भाई-बहन और मेरी बहन के दामाद भी थे जिन्हें पुलिस की हिरासत में कई घंटों तक बंद रखा गया। उनका कसूर यह था कि वे मेरे स्वागतार्थ हवाई अड्डे की तरफ आ रहे थे। ऐसा तो गुलाम भारत में भी नहीं हुआ था कि एक बीमार आदमी को देखने के लिए लोग जाएं और उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाए। परन्तु मुझे विश्वास है कि शासन की यह कार्यवाही संघर्षशील जनता और जुझारू युवकों के इरादों को और भी पक्का करेगी। पता नहीं यहां का शासन क्यों इतना बुज़दिल है, क्यों इतना भयभीत है! मैं यहां आंदोलन का नेतृत्व करने नहीं आया हूं, अपने घर आया हूं। मैं तो चाहता हूं कि सामान्य स्थिति शीघ्र ही लौटे। परन्तु शासन की नीतियों के कारण स्थिति सामान्य नहीं हो पाती।

'पिछला वर्ष देश के जीवन में भारी उथल-पुथल का वर्ष रहा है। २५ जून, '७५ तक भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र था। २६ जून, '७५ से वह एक

अधिनायक तंत्र में परिवर्तित कर दिया गया। अभी लोकतंत्र का सम्पूर्ण वध तो नहीं हुआ है, लेकिन यह सिसक रहा है, दम तोड़ रहा है। २५ जून, '७५ तक जनता इस देश की मालिक थी, परन्तु २६ जून, ७५ से आपका यह अधिकार छिन गया है और लोकशाही के स्थान पर एक व्यक्ति की तानाशाही कायम हो गई है। मैं बिहार और भारत की जनता को तथा अपने बहादुर युवकों एवं छात्रों को बधाई देता हूं जिन्होंने इस परिस्थिति का डटकर सामना किया और आज भी कर रहे हैं। मुझे खास कर इस बात से खुशी है कि उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में भी आंदोलनकारी छात्रों और युवकों ने अपने दिमाग पर काबू रखा और उन्होंने शांतिमय आंदोलन के अनुशासन का पालन किया।

'बिहार में जो आंदोलन हुआ, वह यहां के छात्रों और युवकों ने शुरू किया था। मैं तो उसमें बाद में शामिल हुआ और छात्र-नेताओं के बार-बार आग्रह करने पर मैंने उसकी बागडोर हाथ में ली।

'१८ मार्च, '७४ की घटना से जो तनाव का वातावरण पैदा हुआ था, उसे शांति में परिवर्तन करने के लिए मैंने ६ अप्रैल, '७४ को वह ऐतिहासिक मौन जुलूस निकाला जिसका अद्भुत प्रभाव जन-मानस और युवा-मानस पर पड़ा। यह मौन जुलूस छात्रों के आंदोलन को हिंसक तत्त्वों से बचाने और उसे शांति के तत्त्वों से जोड़ने की दिशा में प्रयास था। अगर उस समय सरकार बिहार छात्र संघर्ष समिति के नेताओं को बुलाती और उनसे सहानुभूतिपूर्वक बातचीत करती तो यह आंदोलन उग्र स्वरूप धारण नहीं करता। सरकार की क्रूर दमनकारी नीतियों के फलस्वरूप आंदोलन का रूप अधिकाधिक सरकार-विरोधी होता गया।

'बिहार सरकार की दमनात्मक कार्यवाही से सरकार के इस्तीफे की और विधान सभा के विघटन की मांगों को बल मिला। फिर तो इन मांगों के पीछे जनता का समर्थन व्यक्त करने के लिए व्यापक पैमाने पर हस्ताक्षर-अभियान हुआ, बड़े-बड़े जन-प्रदर्शन और जन-सभाएं हुईं और सारा बिहार लगातार तीन दिन तक बंद रहा। अन्त में ४ नवम्बर, '७५ को वह कूच पटना में हुआ जिसको रोकने के लिए केन्द्रीय रक्षा पुलिस ने अंधाधुंध अश्रुगैस के गोले और लाठियां बरसाईं और सैकड़ों लोगों को घायल कर दिया। मैंने भी उनकी लाठी की मार खाई। अगर श्री नानाजी देशमुख और श्री अली हैदर आदि ने (जिनमें मेरी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए नियुक्त बिहार पुलिस के सिपाही भी

थे) पुलिस की लाठी का वार अपने ऊपर झेल नहीं लिया होता तो उस दिन मेरी लाश निकल जाती या मैं बुरी तरह घायल हो जाता।

'बाद में लुधियाना, कुरुक्षेत्र और कलकत्ते में पुलिस, कांग्रेसी या उनके भड़ैत लोगों ने मुझपर हमला किया। क्या आजाद भारत में मुझे इतना भी हक नहीं था कि मैं देश-भर में घूमकर सभाएं कर सकूं और जनता को अपने विचार समझाऊं?

'इन सब घटनाओं के बावजूद सम्पूर्ण क्रांति का कारवां बढ़ता गया। ६ मार्च, १९७५ को दिल्ली में वह ऐतिहासिक जन-प्रदर्शन हुआ जिसमें देश-भर से आए कई लाख लोगों ने भाग लिया था।

'आपको याद होगा, पटना में ५ जून, '७४ को हमारे विराट् जुलूस पर कुख्यात इंदिरा ब्रिगेड के लोगों ने गोली तक चलाई थी। लेकिन जुलूस की तरफ से किसीने एक कंकड़ भी नहीं फेंका। फिर भी हिंसा का आरोप इंदिराजी हमारे आंदोलन पर लगाती हैं। उल्टे चोर कोतवाल को डांटे वाली कहावत यहां चरितार्थ हुई है।

'इलाहाबाद हाई कोर्ट के निर्णय के बाद इंदिराजी को प्रधानमंत्री के पद से स्वतः हट जाना चाहिए था। अगर ऐसा वे करतीं तो जनता की नजर में उनकी इज्जत बढ़ जाती। परन्तु इसके बदले उन्होंने किसी भी कीमत पर प्रधानमंत्री के पद पर बने रहने का निश्चय किया। हमारे आंदोलन का एक मुख्य उद्देश्य था भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करना। इसलिए जब एक उच्च न्यायालय ने इंदिराजी को भ्रष्ट घोषित किया तो हमारे लिए चुप रहना असंभव हो गया और तब हमने भी एक बयान देकर यह मांग की कि इंदिराजी को प्रधानमंत्री पद से हट जाना चाहिए। हमने यह कहा था कि जब तक सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय नहीं हो जाता और वह इंदिराजी को भ्रष्टाचार के आरोपों से मुक्त नहीं कर देता, तब तक प्रधानमंत्री की गद्दी पर उन्हें नहीं बैठना चाहिए। चारों ओर से यह आवाज उठने लगी थी कि इंदिराजी पर भ्रष्टाचार के आरोप सिद्ध हुए हैं इसलिए वे इस्तीफा देकर हट जाएं। विरोधी पक्ष भी एकजुट हो गए थे, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। गुजरात में जनता मोर्चे की विजय का उदाहरण सामने था। यह सब देखकर इंदिराजी और उनके मित्रों को भय हुआ कि अगर लोकतंत्र कायम रहा तो चुनाव में जनता उन्हें तथा उनके दल को निकाल बाहर करेगी। इसलिए उन्होंने लोकतंत्र को ही समाप्त करने का निश्चय किया। इंदिराजी को अपने दल पर भी भरोसा

नहीं था। उनके दल के भी बहुत सारे संसद् सदस्य यह चाहते थे कि वह प्रधानमंत्री के पद से इस्तीफा देकर लोकतांत्रिक परम्परा की रक्षा करें और उनके स्थान पर कांग्रेस दल का कोई दूसरा नेता प्रधानमंत्री बने। परन्तु वे इसके लिए तैयार नहीं हुईं, क्योंकि उन्हें भय था कि एक बार हटने पर वे फिर प्रधानमंत्री नहीं बन पाएंगी। इमर्जेन्सी उनकी व्यक्तिगत सत्ता की हिफाजत के लिए अनिवार्य बन गई थी।

'इंदिराजी का एक मुख्य आरोप यह है कि मैंने पुलिस और सेना को विद्रोह करने के लिए उकसाने का प्रयास किया था। यह एक मिथ्या आरोप है। मैंने पुलिस या सेना के जवानों से यह कभी नहीं कहा कि वे मौजूदा शासन के खिलाफ विद्रोह कर दें। अपने सार्वजनिक भाषणों में मैंने हमेशा इसी बात पर बल दिया था कि पुलिस के जवानों को गैर कानूनी आदेशों का पालन नहीं करना चाहिए। यह पुलिस ऐक्ट में ही लिखा हुआ है कि अगर पुलिस का कोई आदमी गैर कानूनी आदेश का पालन करता है, तो वह सजा का भागी हो सकता है। अपने भाषणों में मैंने पुलिस ऐक्ट की ही बात दोहराई थी। जहां तक सेना का सम्बन्ध है, मैंने यही बार-बार कहा है कि सेना को देश के प्रति, राष्ट्रीय झण्डे के प्रति और संविधान के प्रति वफादार रहना चाहिए। अगर किसी दल की सरकार अपने दलीय हितों को आगे बढ़ाने या लोकतंत्र को दबाकर अपने दल की तानाशाही कायम करने के लिए सेना का इस्तेमाल करना चाहे तो सेना का कर्तव्य है कि वह लोकतंत्र की रक्षा करे क्योंकि हमारा संविधान लोकतांत्रिक है। यह कहने की जरूरत मुझे तब पड़ी जब मैंने अनुभव किया कि इंदिराजी सेना का इस्तेमाल लोकतंत्र को कुचलने के लिए कर सकती है। बी०एस०एफ० का इस्तेमाल तो उन्होंने हमारे आंदोलन को दबाने के लिए किया ही था···। आपने सुना ही होगा कि बम्बई में मैंने नये राजनीतिक दल के निर्माण की घोषणा की थी। अभी नया दल बना नहीं है, लेकिन उसके बनने की आशा है। मुझे विश्वास है कि नया दल बनकर रहेगा, क्योंकि परिस्थिति की आकांक्षा है कि ऐसा एक मजबूत विरोधी दल बने जो सत्तारूढ़ कांग्रेस का राजनीतिक विकल्प हो सके।

'मैं वर्षों से निर्दलीय मंच से काम रहा हूं और दल एवं सत्ता की राजनीति से अलग रहा हूं। फिर भी मैं हमेशा यह मानता रहा हूं कि अगर इस देश में संसदीय लोकतंत्र को सफलतापूर्वक चलाना है तो एक मजबूत विरोधी दल का होना आवश्यक है। मैं आज भी अपने उस पुराने संकल्प पर दृढ़ हूं कि दलीय या

सत्ता की राजनीति में स्वयं भाग नहीं लूंगा यानी मैं न तो कभी चुनाव लड़ूं और न सत्ता ग्रहण करूंगा। परन्तु लोकतांत्रिक संदर्भ में विशेषकर संसद लोकतंत्र के संदर्भ में एक राजनीतिक विकल्प की आवश्यकता मैंने हमे स्वीकार की है। और आज उसको तीव्रता से महसूस कर रहा हूं। इसका यह कदापि नहीं है कि मैंने निर्दलीय लोकमंच और युवामंच के निर्माण विचार छोड़ दिया है या उसकी आवश्यकता अब महसूस नहीं करता। मानता हूं कि इस प्रकार का मंच तो हर हालत में जरूरी है। यह मंच एक तरफ तो लोकतंत्र के प्रहरी का काम करेगा और दूसरी ओर जनता के प्र निधियों को सही मार्ग पर रखने का प्रयत्न करेगा।

'अब तो मैं एक घायल सिपाही हूं। इसलिए अपने संघर्ष-रथ की बाग अब खुद आपको संभालनी होगी। इसलिए लम्बे अर्से तक जूझने की तैय आपकी होनी चाहिए। इतिहास की शक्तियां आपके पक्ष में हैं। अतः आप आत्मविश्वास से आगे बढ़ते जाएं। आपकी विजय निश्चित है।

'आपने सुना होगा कि इंदिराजी वर्तमान लोकसभा से ही संविधान बुनियादी रूप से संशोधित करा लेना चाहती है। वर्तमान लोकसभा संविधान में कोई संशोधन करने का हक नहीं है, क्योंकि इसके लिए उस जनता का आदेश नहीं है और जो भी मेन्डेट था वह समाप्त हो चुका है जनता सर्वोपरि है इसलिए संविधान में कोई भी संशोधन करने के लिए जन से पूछना चाहिए। लेकिन इंदिराजी इसी लोकसभा से वे सारे संशोधन प करा लेने के लिए उतारू हैं, क्योंकि उन्हें यह भरोसा नहीं है कि आगे लोकसभा चुनी जाएगी उसमें उनके दल को दो तिहाई बहुमत मिल सकेगा किसी भी संवैधानिक संशोधन को पारित करने के लिए जरूरी है।

'ऐसी परिस्थिति में प्रमुख विरोधी पक्षों ने संवैधानिक संशोधनों के प पर संसद की चर्चा में भाग लेने से इन्कार किया है। उनका यह निर्णय बिल्कु उचित है। मैं खुद संविधान में समुचित संशोधन करने का हिमायती रहा हू मिसाल के लिए इमर्जेन्सी लागू करने के लिए कौन-सी स्थितियां जरूरी इसको संविधान में स्पष्टतापूर्वक अंकित करने की आवश्यकता है। आज संविधान की ही धाराओं का इस्तेमाल संविधान के बुनियादी ढांचे को तोड़ के लिए किया जा रहा है, और जन के अधिकार सीमित किए जा रहे है संविधान के ढांचे में जो छिद्र हैं, जिधर से जनता के अधिकार निकलव शासक दल के हाथों में इकट्ठे हो रहे हैं, उन छिद्रों को बन्द करना जरूरी है

'भारत की राजनीति में श्री संजय गांधी का प्रवेश जिस ढंग से हुआ है और जिस प्रकार उन्हें ऊपर उछाला जा रहा है, उससे यह ज़ाहिर है कि इंदिराजी चाहती हैं कि उनके बाद उनके सुपुत्र प्रधानमंत्री के सिंहासन पर बैठें। लोकतंत्र के स्थान पर इस प्रकार वंशतंत्र को प्रतिष्ठित किया जा रहा है। अब जनता को तय करना है कि इस देश में क्या चलेगा—लोकतंत्र या राजतंत्र ?

'बिहार के अखबारों में मेरे पटना लौटने की खबर नहीं छपने दी गई। पटना के फोटोग्राफरों को हुक्म हुआ है कि जयप्रकाश नारायण के वे चित्र नहीं ले सकते। ऐसी कठोर पाबंदियां समाचारपत्रों पर लगी हुई हैं। लेकिन इंदिराजी दुनिया से कह रही हैं कि यहां सेंसरशिप नहीं है। जिस देश की प्रधानमंत्री इस तरह से झूठ बोलती हों, वहां क्या नहीं हो सकता है ?

'लोकतंत्र को वापस लाने के लिए और उसकी हिफाज़त के लिए यह आवश्यक है कि आप निडर बनें। मुझे भरोसा है कि इस देश के युवक और छात्र किसी भी कीमत पर लोकतंत्र के झण्डे को झुकने नहीं देंगे और वैयक्तिक एवं नागरिक स्वतंत्रता की मशाल को अपनी आहुति देकर भी जलाए रखेंगे।'

यह चुना हुआ अंश उस चालीस पृष्ठीय पत्र से है, जिसे २ सितम्बर, १९७६ को जयप्रकाश ने पटना लौटकर बिहारवासियों को संबोधित कर लिखा था।

१८ जनवरी, १९७७ को श्रीमती गांधी ने लोकसभा के चुनाव की घोषणा की। और विपक्षी दल के नेता जेलों से रिहा होने लगे।

दरअसल वह चुनाव नहीं, जनता के भाग्य का फैसला था। आपातस्थिति में, उस भय और दमन के बाद अचानक चुनाव। एक ओर साधनसम्पन्न, अतुल बलशाली कांग्रेस, दूसरी ओर साधनहीन, शक्तिहीन, घायल, टूटे-फूटे विपक्षी दल। पर इस सच्चाई के भीतर जो एक अदृश्य सत्य पनपा था १९ महीनों के कारावास में—एकता का सत्य, और उस सत्य को संगठनात्मक स्वरूप दिया था जे० पी० ने बम्बई के जसलोक अस्पताल में बैठकर, बम्बई के राजा बाबू के घर रहकर, इंडियन एक्सप्रेस के गेस्ट हाउस में जी कर, इसका पता इंदिरा-सत्ता को उतना नहीं था। सत्ता को इस सच्चाई का भी तनिक अनुमान नहीं था कि इस बीच भारतीय जन-मानस में कितना क्या कुछ बदल गया है। सारी

सच्चाई, सारे सूत्र, सारी लोकशक्ति जैसे जे० पी० के हाथ में थी।

चुनाव घोषित होते ही सब कुछ सक्रिय होने लगा। सारे प्रतिपक्ष अ
उनके नेताओं की आंखें केवल जयप्रकाश पर टिक गईं। पटना से उन्हें दिल्
बुलाने के लिए लोग दौड़ने लगे। फोन, तार, लोग सब···।

चुनाव की घोषणा पर सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया अगले दिन आई।
जनवरी को लोकनायक जयप्रकाश ने चुनाव की घोषणा का स्वागत करते
आशा की कि नई स्थिति में विभिन्न विरोधी दल अपनी एक संगठित प
बनाकर चुनाव लड़ेंगे। उन्होंने कहा—'अगर विरोधी दल अपने को विलीन
एक दल बनाते हैं, तो मैं उस दल का साथ दूंगा, अन्यथा मैं चुनाव-प्रचार
अलग रहूंगा।'

जे० पी० के इस दो टूक बयान और इसमें छिपे एक श्रेष्ठ नैतिक दबाव
जैसे सब कुछ बिखरा हुआ एक हो गया। २३ जनवरी को जनता पार्टी
निर्माण की घोषणा हो गई।

जे० पी० के परमप्रिय चन्द्रशेखर दिल्ली से पटना गए और जे० पी०
अपने साथ २५ जनवरी को दिल्ली ले आए। उस शाम गांधी शांति प्रतिष्ठान
जे० पी० को देखने और मिलने समस्त जनता पार्टी के नेता आए। जे० पी
बहुत कमज़ोर थे पर बहुत ही आनंदित थे। जनता पार्टी के वही तो जनक थे
२६ की सुबह जे० पी० फिर पटना चले गए उस दिन, बुधवार, उनके 'डायल
सिस' का दिन था।

फिर जे० पी० ५ फरवरी को दिल्ली आए। ६ फरवरी को रामली
ग्राउण्ड से जनता पार्टी की पहली जनसभा के मंच पर उनके दर्शनों के लि
जैसे सारी दिल्ली उमड़ पड़ी थी। वह सभा अभूतपूर्व थी। करीब दस ल
लोगों का समागम था। दुनिया-भर के इतिहास में किसी राजनीतिक सभा
इतना बड़ा जन-समूह आया हो, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। जे० पी० ने भ
कंठ से कहा—'२५ जून, १९७५ को इसी समय, यहीं से मैंने आपको कुछ क
था। आज करीब बीस महीने बाद फिर इस दशा में आपके सामने आया हू
···जनता निर्भय होकर अपने मतदान के अधिकार का इस्तेमाल करे। य
अभूतपूर्व चुनाव किसी पार्टी के भाग्य का फैसला नहीं करने जा रहा है, बल्कि
प्रजातंत्र और तानाशाही के बीच जनता के भाग्य का फैसला है।'

१८ फरवरी को जे० पी० ने सच्चे लोकतंत्र के उदय को सामने रख ए
महत्त्वपूर्ण बयान दिया—'चुनाव की तिथि जैसे-जैसे निकट आती जा रही

चुनाव-सभाओं और प्रचार-अभियानों में अशान्ति की खबरें सुनता हूं। दक्षिण कलकत्ता संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से जनता पार्टी के उम्मीदवार प्रोफेसर दिलीप चक्रवर्ती पर हुए घातक हमले की खबर आप लोगों ने भी अखबारों में पढ़ी होगी। मैं स्वयं तो इतना स्वस्थ नहीं हूं कि देश के कोने-कोने में घूमकर इन सबकी तहकीकात कर सकूं। देश के सामाजिक जीवन में घुमड़ने वाली अशांति की आशंका को शांत करने के लिए एक शांत-सैनिक की भूमिका में मैं जीवन-भर घूमता ही रहा हूं। आज भी स्वास्थ्य की लाचारी न होती तो मैं जनता के बीच पहुंचता। पिछले १९ महीनों में जन-भावना को जिस फूहड़ता से दबाया गया है वह यत्र-तत्र फूट पड़ी है तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। फिर भी रेडियो, अखबारों में अशांति की ऐसी खबरें पढ़कर मैं चिंतित हुआ हूं। मुझे नहीं मालूम यह सब कौन लोग कर रहे हैं और किसके इशारे पर। आज के माहौल में हर दल एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करता ही है। इसलिए मैं आम नागरिकों से चाहे वे किसी दल के समर्थक हों और अपने युवकों से गंभीरतापूर्वक कुछ बातें कहना चाहता हूं।

'यह चुनाव कितने नाजुक समय पर हो रहा है और कितना बड़ा निर्णय करने हम जा रहे हैं यह मैं बार-बार समझाता रहा हूं। इस बार हमारी छोटी-सी चूक भी वर्षों के लिए देश को अंधकार के गर्त में धकेल देगी। इसकी गम्भीरता हमें समझनी चाहिए और उसीके अनुरूप करना चाहिए। दुनिया को यह देखने का मौका दीजिए कि अपने भाग्य के निर्णय के वक्त हम भारतवासी कितना संजीदा और दायित्वपूर्ण व्यवहार करते हैं। जनता पार्टी के सभी समर्थकों, कार्यकर्त्ताओं को मेरा निर्देश है कि कांग्रेस के प्रति आपका आक्रोश कोरी नारेबाजी में नहीं, जन-शिक्षण के ठोस काम में प्रकट होना चाहिए। कोरी नारेबाजी और प्रचार से जनता को गुमराह नहीं किया जा सकता है। सामान्य नागरिकों की विशिष्ट प्रतिभा पर भरोसा रखिए और उनके बीच घूमकर अपनी बातें शालीनतापूर्वक समझाइए, अपने कार्यक्रम बताइए। कांग्रेस और दूसरे विरोधी पक्षों की सभाओं में जाकर जो अपनी भावनाओं के आवेग रोक न सकते हों वे कृपा कर उनकी सभाओं तथा दूसरे कार्यक्रमों में जाएं ही नहीं। शांतिमय प्रतिकार का यह भी एक तरीका है।

'हिंसा या हुल्लड़बाजी को छोटी से छोटी वारदात हमारा पक्ष कमजोर करेगी। लोकतंत्र का पक्ष कमजोर करेगी। सबको अपनी बात कहने, अपना कार्यक्रम समझाने का अधिकार, लोकतंत्र की आत्मा है। कांग्रेस ने उसी आत्मा

को अपनी मनमानी में कुचल देने की कोशिश की, जिसका फल वे आज भोग रहे हैं। हमें इसके प्रति सचेत रहना है और छोटी से छोटी जगहों पर भी विरोधी पक्ष को अपनी बात कहने का पूरा अधिकार देना है। मन का आक्रोश दबा लीजिए। उनकी गलतबयानी सुन लीजिए और वोट डालते वक्त अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कीजिए। आपका डाला एक-एक वोट दरअसल आपकी प्रतिक्रिया का ही द्योतक तो है।

'अब तो चुनाव के बाद ही आप सबसे मिलना और कहना हो सकेगा। मैं विश्वास करता हूं कि सच्चे लोकतंत्र के प्रति अपनी वफादारी का प्रमाण देने में हम कच्चे साबित नहीं होंगे।'

कलकत्ता, दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, गुजरात का चुनाव दौरा अपने उस घायल शरीर से करते हुए और उतनी अस्वस्थता में इतनी विशाल सभाओं में बोलते हुए जे० पी० अंततः बम्बई पहुंचकर पूर्णतः अस्वस्थ हो गए। उनकी बीमारी से सारा देश थरथरा गया। बम्बई के जसलोक अस्पताल में उनका आपरेशन हुआ। जसलोक में पड़े जे० पी० ने ३ मार्च को बिहार के मतदाताओं के बहाने सम्पूर्ण देश के भाई-बहनों से अपील की—'मित्रो, मुझे बड़ा दुःख है कि ठीक समय पर मैं बीमार हो गया और इस समय बम्बई के जसलोक अस्पताल में पड़ा हूं। आशा है, इस बेबसी के लिए मुझे आप क्षमा करेंगे। और रोग-शय्या से लिखे हुए इस सन्देश को स्वीकार करेंगे।

'यह मैं कई बार कह चुका हूं कि लोक सभा के लिए आने वाले चुनाव देश के भाग्य के लिए निर्णायक होने वाले हैं। चुनाव लोकशाही एवं तानाशाही के बीच है। इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले के बाद इन्दिराजी ने जो अपना रूप प्रकट किया, तानाशाह बनीं, और सवा लाख निरपराध लोगों को कैद में डाल दिया, जिनमें से अब भी कुछ लोग जेल में ही हैं, इमर्जेन्सी की घोषणा की जो अब भी चालू है, प्रेस पर ताला लगा दिया— यह सबको स्मरण होगा। इसलिए मेरी आपसे सानुरोध अपील है कि फिर से इन्दिराजी को शासन में न आने दीजिए। अपना वोट जनता पार्टी को दीजिए और लोकशाही को विजयी बनाइए।'

पूरी आपात स्थिति के दौरान लोकनायक जयप्रकाश के विरुद्ध एकतरफा धुआंधार प्रचार हुआ, पर आपात स्थिति में ढील आते ही यह स्पष्ट हो गया कि इस सारे प्रचार से लोकनायक की प्रतिभा और तपकर प्रकाशमान हुई है। वह देश की नैतिक चेतना के सर्वमान्य प्रवक्ता और आज महात्मा गांधी के

समान सम्मानित युग-पुरुष के रूप में देश की राजनीति पर छाए रहे हैं। जनता पार्टी के जिस अकेले नारे का लोग सबसे अधिक उमंग और उत्साह से उत्तर देते थे, वह था 'अंधकार में एक प्रकाश: जयप्रकाश ! जयप्रकाश ! !"

सचमुच अंधकार के खिलाफ प्रकाश की जीत हुई। समूचे उत्तर भारत में चमत्कार हुआ। उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब और राजस्थान में प्रकाश की प्रचण्ड आंधी के आगे जाति, धर्म, सम्प्रदाय, दल, असत्य, कुशक्ति के किले ढह गए।

जे० पी० के सपनों का भारत उस दिन उग रहा था लोक-मानस के क्षितिज पर जहां से लोकनायक के प्रत्येक सांस से यह सुनाई पड़ रहा था--

'मेरे सपनों का भारत एक ऐसा समुदाय है, जिसमें हरेक व्यक्ति, हरेक साधन निर्बल की सेवा के लिए समर्पित है – अंत्योदय तथा निर्बल और असहाय की बेहतरी को समर्पित समुदाय।

'वह ऐसा समुदाय है, जिसमें लोगों की मानवता की कद्र है—वह समुदाय, जिसमें हरेक व्यक्ति को अपनी अंतरात्मा के अनुसार कार्य करने का अधिकार मान्य है और सब उसका सम्मान करते हैं।

'वह ऐसा समुदाय है, जिसमें अलग-अलग विचारों पर शांतिपूर्ण ढंग से तर्क-वितर्क होता है। जिसमें मतभेद सभ्य तरीके से तय किए जाते हैं।

'वह ऐसा समुदाय है, जिसमें सबके पास काम है—ऐसा काम, जिसमें उन्हें संतोष भी होता है और सुन्दर जीवनयापन भी। वह ऐसा समुदाय है, जिसमें हरेक को अपनी निजी रचनात्मक क्षमता को विकसित करने की पूरी गुंजाइश है, जिसमें हरेक दस्तकार की, फैक्टरी या फर्म जहां भी वह काम करता है, उसके स्वामित्व और प्रबंध में भागेदारी और दखल है।

'वह ऐसा समुदाय है, जिसमें सबको बराबर के अवसर प्राप्त हैं—वह समुदाय, जिसमें शक्तिशाली, बहुसंख्यक स्वयं ही निर्बल वर्ग, अल्पसंख्यकों की बाधाओं को समझते हैं; और उनको तरजीही सुविधाएं देने के लिए कोई कोर-कसर नहीं रखते, जिससे उनकी ऐतिहासिक बाधाएं दूर हों।

'वह ऐसा समुदाय है, जिसमें हरेक साधन जनता की आवश्यकता की पूर्ति में लगा है—उन्हें पर्याप्त भोजन, कपड़ा, मकान और पीने का पानी मुहैया करने में।

'मेरे सपनों का भारत ऐसा समुदाय है जिसमें हरेक नागरिक समुदाय के कार्य-व्यापारों में हिस्सा लेता है, जिसमें हरेक नागरिक अपने निजी स्वार्थों

से परे सामाजिक मामलों को समझता है और उनमें हिस्सा लेता है। वह समुदाय है जिसमें नागरिक (खास तौर से निर्बल) सुधार लागू करने शासकों पर निगाह रखने के लिए संगठित और जागरूक हैं।'

'सिंहासन खाली करो
कि जनता आती है !'

दिनकर की यह काव्यवाणी सत्य निकली। यह चुनाव अभूतपूर्व पहली बार कांग्रेस से जनता का सीधा चुनाव। जनता जीती। कांग्रेस गई। लोक विजयी हुआ, राजसत्ता हार गई। प्रजातंत्र की जीत, तानाशाही हार।

जनता पार्टी की विजय !

२४ मार्च '७७, सुबह का प्रकाश फूटा भी न था कि देश ने राज पहुंचकर गांधी को जगाया। गांधी की नींद जरूर टूटी होगी !

जनता पार्टी, कांग्रेस फार डेमोक्रेसी और अकाली दल के संसद सदस्य इतनी सुबह गांधी-समाधि पर उनके अधूरे कामों को पूरा करने, राष्ट्रीय ए बढ़ाने और सादगी तथा ईमानदारी से काम करने का संकल्प किया।

जयप्रकाश ने हिन्दी और अंग्रेजी में शपथ-पत्र पढ़ा। निर्वाचित सदस्य वही दुहराकर शपथ ली। समाधि की ओर मुंह करके बैठे जयप्रकाश के श्री जगजीवनराम, श्री मोरारजी देसाई और आचार्य कृपलानी बैठे थे। सं सदस्य उनके पीछे बैठे थे।

समाधि-स्थल के सभी द्वारों और परकोटों पर इतनी बड़ी संख्या में ल उपस्थित थे कि स्वयंसेवकों और पुलिस को प्रबंध करना कठिन हो गया थ

वह दृश्य अपूर्व था।

कौन उसे नहीं देखना चाह रहा था।

कार्यक्रम वंदे मातरम से शुरू हुआ। फिर वेद, कुरान, बाइबिल आ धर्मग्रंथों के अंशों का पाठ हुआ। गांधर्व महाविद्यालय की छात्राओं ने बापू प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए···' गाया।

बाद में राष्ट्रगान हुआ। सदस्यों ने समाधि की परिक्रमा की और पु चढ़ाए।

कार्यक्रम का संचालन जनता पार्टी के महासचिव श्री लालकृष्ण अडवा ने किया।

संकल्प

सदस्यों ने जो संकल्प लिया वह इस प्रकार है—

'भारतीय जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि हम लोग, जो राष्ट्र पिता महात्मा गांधी की समाधि पर एकत्र हुए हैं, उनसे प्रेरणा लेते हैं और पूर्ण प्रामाणिकता से यह संकल्प करते हैं कि—

'१. महात्माजी ने जिस कार्य का शुभारंभ किया उसे हम पूर्ण करेंगे।

'२. हम अपने देशवासियों की सेवा करेंगे और अन्त्योदय के लिए अपने को अर्पित करेंगे।

'३. भारतीय गणतंत्र के नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता के अनुल्लंघनीय अधिकारों की रक्षा करेंगे।

'४. हम उत्सर्ग की भावना से राष्ट्रीय एकता तथा समरसता को बढ़ाएंगे और उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व ने जो दिशा दिखाई है उसके प्रति निश्चय-पूर्वक आगे बढ़ेंगे।

'५. निजी तथा सार्वजनिक जीवन में सादगी तथा ईमानदारी से काम लेंगे। हमारी प्रार्थना है कि गांधीजी का आशीर्वाद हमारा पथ प्रकाशित और प्रशस्त करे।'

वहां से लौटकर गांधी शांति प्रतिष्ठान में सांसदों के समक्ष जयप्रकाश ने कहा—'सत्ता की कुर्सी खतरनाक होती है।'

संसद् के केन्द्रीय कक्ष में जे०पी० ने कहा—'आगे का इतिहास लोकशक्ति का होना चाहिए।

'यह संपूर्ण क्रांति का श्रीगणेश हुआ है। हमें इसकी मशाल लेकर चलना है। बातें करना नहीं है, बल्कि बुनियादी परिवर्तन करना है!

'आगे का रास्ता लोकशक्ति का मार्ग होगा। सत्ता के ऊपर अंकुश रखने वाला एक लोक संस्थान होगा, जिसके पास आम नागरिक, राजनीतिक दल और जनता भी निर्भय, निःसंकोच जा सके। और उसके जो सुझाव होंगे उसे सरकार मान्य करे!

'जो नहीं माने वह सिंहासन फिर खाली करे!'

●●●